अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 7 आषाढ़-श्रावण वि.सं. 2082 जुलाई, 2025 पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

किशोर–किशोरियों के साथ पर्यावरण दिवस का उत्सव

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में विश्व पर्यावरण दिवस पर मनुष्य के भविष्य के लिए धरती को बचाने की बात स्कूली विद्यार्थियों के साथ की गई जिनमें किशोरियां अधिक थी।

समिति के उपवन में जामुन के पेड़ों के गुंबज जैसे झुरमुट के नीचे बैठ कर विद्वानों ने पेड़ों और पक्षियों की बातें कीं तथा प्लास्टिक से होने वाले नुकसान के बारे में विद्यार्थियों को समझाया।

मुख्य वक्ता वनस्पति विशेषज्ञ देवेंद्र भारद्वाज तथा अन्य विद्वानों ने वार्ता के माहौल को स्कूली कक्षा जैसा नहीं होने दिया। सभी ने किशोर–किशोरियों से आपसी संवाद ही किया।

छात्र–छात्राओं तथा उनके साथ आई शिक्षिकाओं को समिति की तरफ से एक–एक पौधे का उपहार दिया गया।

ग्रासरूट मीडिया फाउंडेशन के प्रमोद शर्मा बीजों को उगा कर बनाए पौधे लेकर आए थे। उन पौधों को समिति उद्यान में रोपा गया।

आयोजन में समिति के सचिव हिमांशु व्यास के अलावा होम्योपैथी के जाने माने चिकित्सक डॉ. अशोक शर्मा तथा वनस्पति प्रेमी राजेंद्र सिंह ने भी अपने अनुभव साझा किए।

समिति के सहयोगी श्रीमती बटिना मलिक तथा दिलीप शर्मा द्वारा श्रीमती रमा भारद्वाज की मदद से संयोजित यह कार्यक्रम अनूठा रहा। ❑

गांधी, जिन्ना, आंबेडकर और आजादी किताब पर चर्चा

भारत की आज़ादी की कहानी के तीन प्रमुख पात्रों गांधी, जिन्ना और आंबेडकर को एक बार फिर नई दृष्टि से देखते हुए आई एक पत्रकार की पुस्तक पर राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में एक महत्वपूर्ण गोलमेज चर्चा हुई।

प्रतुल सिन्हा की किताब गांधी, जिन्ना, आंबेडकर और आजादी पर चर्चा में राजस्थान विधान सभा के पूर्व अध्यक्ष सी. पी. जोशी, पूर्व मंत्री बी. डी. कल्ला तथा विधानसभा के सदस्य जोगेश्वर गर्ग भी शामिल थे। तीनों राजनेताओं ने लेखक के विस्तृत होमवर्क तथा उसकी बेबाकी की तारीफ की। चर्चा की दिलचस्प बात यह रही कि लगभग सभी वक्ता महात्मा गांधी पर अधिक केंद्रित रहे। हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति सनी सेबेस्टियन, शायर लोकेंद्र कुमार 'साहिल' तथा लेखक राघवेंद्र रावत ने भी पुस्तक और उसकी विषयवस्तु पर अपने विचार व्यक्त किये।

प्रतुल सिन्हा ने बताया कि उन्हें पुस्तक की सामग्री के संकलन में आठ साल लगे। गोलमेज संवाद का संचालन जनसंपर्क विभाग के पूर्व उच्च अधिकारी अरुण जोशी ने किया। ❑

वाणी

**कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥**

— रामचरितमानस बालकाण्ड

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है
जो सभी का हित करने वाली हो।

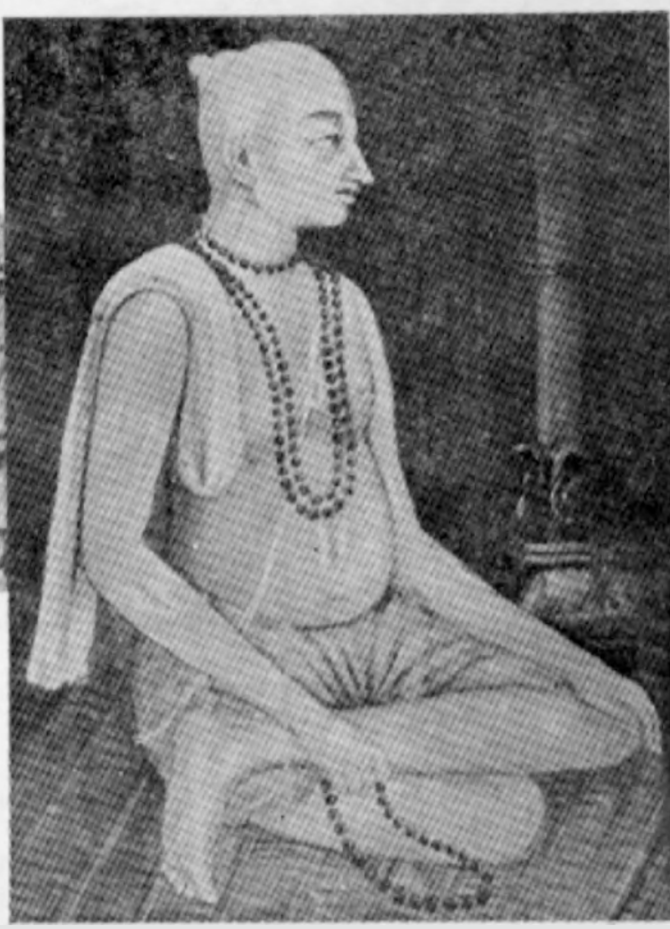

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 7 आषाढ़-श्रावण वि.सं. 2082 जुलाई, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. रामचरित मानस-बालकांड

संपादकीय

5. वृत्ति और विवेक में समन्वय जरूरी

लेख

7. रचनात्मक शिक्षण अर्थात छात्रों को जानना सिखाएं! **– प्रो.पी.पी.शाह**

नज़रिया

9. कला का समुदायों से संबंध **– रघु गुल्लापल्ली**

विमर्श

11. सबके लिए प्रीस्कूल सपने को वास्तविकता बनाना है ! **– रुक्मिणी बनर्जी**

निबंध

13. बदला लेने की भावना! **– जेम्स किमेली जूनियर**

लेख

14. ब्रह्मांड की उत्पत्ति का पता लगाने की वैज्ञानिको में अनोखी होड़ **– पल्लब घोष**

पुस्तक चर्चा

16. मानव कहलाने लायक चेतना **– रा.बो.**

विमर्श

18. जनसंचार माध्यम बन रहे हिन्दी भाषा के लिए संकट **– डॉ.कन्हैयालाल खांड़पकर**

20. बच्चों में अच्छे संस्कारों की बात अब रूढ़ि लगने लगी है **– सदाशिव श्रोत्रिय**

समस्या

22. कुछ युवाओं के लिये व्यस्कता की दहलीज लांघना आसान नहीं होता **– प्रीति प्रसाद, सत्यजीत मजूमदार**

लेख

24. 'त्सुंडोकू' : किताबों से घर सजाने की जापानी परंपरा **– जेमी राइडर**

स्मृति शेष

26. शोध के साथ रोमांच रचने वाला लेखक नहीं रहा

27. वाल्मीक थापर का निधन

वर्षा ऋतु

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,

जयपुर-302004

फोन : 2700559, 2706709, 2707677

ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा

प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

वृत्ति और विवेक में समन्वय जरूरी

मानव प्रजाति एक प्राचीन मस्तिष्क लिए हुए अतीत में, पूर्वाग्रहों, भ्रांतियों और भ्रमों में अटक गई है। क्या वह आधुनिक दुनिया की जटिलताओं को समझने में अक्षम है? इतिहास इसकी ताईद नहीं करता। आख़िरकार, मनुष्यों ने ही तो सभ्यताओं का निर्माण किया है, प्रकृति के नियम खोजे हैं रोगों को परास्त किया है और विवेकशीलता की पहचान की है। मानव प्रजाति स्वाभाविक रूप से विवेकहीन नहीं है। हालाँकि, हम अपने विवेकशील पक्ष का उतना उपयोग नहीं करते जितना हम कर सकते हैं।

हमारे मानस का सबसे कमजोर हिस्सा वह है जहां हम अपने विवेक या अपनी तर्कशक्ति की जगह अपनी वृत्ति पर अधिक भरोसा करते हैं। हमारी इसी भूल का लाभ बाजार की कंपनियां उठाती हैं। ये विराट कंपनियां पैसे के बल पर अपना वर्चस्व बनाती है। वे नीति निर्माताओं के सामने अपनी जोरदार पैरवी करती हैं। वे चुनावी धांधलियों में राजनैतिक पार्टियों की मदद करती हैं। वे राजनेताओं को गुपचुप धन पहुंचाती हैं। मगर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे हमारी सहज इच्छाओं को अपने हिसाब से उलट-पलट देती हैं ताकि हम उनका माल खरीद कर खुश हो जाएं। अपने को धन्य मानें। संगठित धर्म के ठेकेदार भी ऐसा ही करते हैं।

विवेक अथवा तर्क शक्ति मनुष्य को अन्य जीवों से अलग बनाने वाली प्रमुख विशेषता है। यह शक्ति उसे सोचने, समझने और निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान करती है। परंतु जीवन के कई अवसरों पर हम तर्क की जगह अपनी वृत्ति या स्वाभाविक प्रवृत्ति – इंस्टिंक्ट – के आधार पर निर्णय लेने लगते हैं। यह वृत्तियां कभी जन्मजात होती हैं तो कभी सामाजिक कंडीशनिंग का परिणाम होती हैं। प्रश्न यह है कि क्या ऐसे अवसरों पर विवेक को त्याग कर वृत्ति का अनुसरण करना उचित है? यदि नहीं, तो हम वृत्ति-आधारित जीवनशैली को विवेकशील कैसे बना सकते हैं?

विवेक वह मानवीय शक्ति है जो विचार, अनुभव और ज्ञान के आधार पर किसी विषय पर, मनुष्य को तर्कपूर्ण निर्णय लेने को सक्षम बनाती है। यह समय, स्थान और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए क्या उचित है और क्या अनुचित का निर्णय करती है। दूसरी तरफ प्रवृत्ति स्वचालित रूप से किसी प्रतिक्रिया को जन्म देती है। यह जैविक, भावनात्मक या सामाजिक कंडीशनिंग से संचालित होती है। जैसे भय से भागना, क्रोध में चिल्लाना, या लालच में आना – ये सब वृत्ति की प्रतिक्रियाएं हैं।

सवाल उठता है कि विवेक की जगह वृत्ति का उपयोग कहां तक उचित है? जब मनुष्य को तत्काल निर्णय लेना होता है और समय सोचने का नहीं होता, वहां वृत्ति

कारगर हो सकती है। जैसे कि किसी दुर्घटना में शरीर स्वतः पीछे हटता है, आग देखकर भागते हैं – ये वृत्ति ही जान बचाती है। ऐसे में विवेक की आवश्यकता नहीं होती। कुछ परिस्थितियों में मनुष्य की वृत्ति उसे खतरों से आगाह कर देती है। जैसे किसी अनजाने स्थान पर असुरक्षा की भावना या किसी व्यक्ति पर भरोसा न होना – यह वृत्ति कभी-कभी सतर्कता का संकेत भी देती है। भावनात्मक संबंधों में प्रेम, करुणा, ममता जैसी मानवीय भावनाएं वृत्तियों पर आधारित होती हैं। परिवार, मित्र या साथी के साथ संबंधों में केवल तर्क नहीं, बल्कि संवेदना की वृत्ति भी महत्व रखती है। लेकिन, यदि वृत्ति का उपयोग तर्क और विवेक के स्थान पर आदतन, अंधतः और बार-बार होने लगे, तो यह कई समस्याओं को जन्म देती है। वृत्ति के अत्यधिक प्रभाव के दुष्परिणाम आवेगपूर्ण निर्णय के रूप में सामने आते हैं। वृत्ति आधारित निर्णय तात्कालिक भावनाओं पर आधारित होते हैं – जैसे गुस्से में निर्णय लेना, डर के कारण अवसर छोड़ देना, या लालच में आकर गलत रास्ता चुनना। इससे दीर्घकालीन हानि हो सकती है।

वृत्ति से प्रभावित लोग जाति, धर्म, लिंग या वर्ग आधारित पूर्वग्रहों में उलझ जाते हैं। जैसे, औरत कमजोर होती है, गरीब आलसी होता है, युवाओं में समझ नहीं होती – ये सब सामाजिक वृत्तियों के उदाहरण हैं, जो विवेक के अभाव में पनपती हैं। जब व्यक्ति विवेक को त्याग कर केवल अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक या व्यक्तिगत वृत्तियों पर चलता है, तो समाज में असहिष्णुता और द्वेष बढ़ता है। इतिहास में धार्मिक संघर्षों, जातीय हिंसा और युद्धों के पीछे ऐसी ही वृत्तियां रही हैं।

वृत्ति-प्रधान जीवन व्यक्ति को आत्म-विश्लेषण और सुधार की प्रक्रिया से दूर करता है। वह जैसा है, वैसा ही बने रहना चाहता है। वह बदलाव से डरता है और गलतियों को दोहराता है।

वृत्तियों को बदला जा सकता है। इसके लिए सबसे पहला कदम है – अपनी वृत्तियों को पहचानना। कौन-सी वृत्ति मुझे बार-बार गुस्से में ला देती है? किस भावना में मैं विवेक खो बैठता हूँ? दिन के अंत में अपने व्यवहार और विचारों का अवलोकन करने लगें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि हम किन वृत्तियों के अधीन हैं।

अच्छी शिक्षा व्यक्ति में विवेक जाग्रत करती है। दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास जैसे विषय हमें यह समझने में मदद करते हैं कि मानवीय प्रवृत्तियां कैसे कार्य करती हैं और उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता ईक्यू का विकास करके व्यक्ति अपने और दूसरों के भावों को समझ पाता है और नियंत्रित कर सकता है। यह वृत्ति को संयमित कर विवेक आधारित व्यवहार को प्रोत्साहित करता है।

भारतीय परंपरा में ध्यान, प्राणायाम और योग को चित्त की वृत्तियों को शांत करने का माध्यम माना गया है। विभिन्न प्रकार के लोगों, विचारों और जीवनशैली से मिलने से भी हमारी सीमित वृत्तियां टूटती हैं। हम सीखते हैं कि कोई एक विचार या प्रवृत्ति ही अंतिम सत्य नहीं होती। मानव मन की बेहतर अंतर्दृष्टि से हम उसे बदलना सीख सकते हैं तथा एक पूरी तरह उपयोग में नहीं आ रहे संसाधन को साध सकते हैं जो हमें 21वीं सदी और उससे आगे चुनौतियों से निपटने में मदद करेगा। ❑

रचनात्मक शिक्षण अर्थात छात्रों को जानना सिखाएं!

उच्च शिक्षा के सरकारी संस्थानों के जैसे हाल आज हैं, उसमें शिक्षण में रचनात्मकता की बात करना थोड़ा बेतुका लग सकता है। कोई भी शिक्षण व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की बात नहीं कर रहा है। नई शिक्षा नीति भी नहीं। ऐसी परिस्थिति में शिक्षण और परीक्षण में रचनात्मकता की अपेक्षा करता स्वर्गीय प्रो. शाह का बहुत पहले लिखा यह आलेख आज भी प्रासंगिक लगता है। ❑ सं.

❑

प्रो. पी. पी. शाह

❑

एक बहुत पुराना सवाल आज भी हमारे सामने मुंह बाये खड़ा है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है? क्या यह कुछ निश्चित चीजों को जानना भर है, या इसका काम नई चीजों का सृजन और आविष्कार करने में छात्र को सक्षम बनना है? यह सवाल स्वाभाविक ही उठता है कि यदि विषय–वस्तु को पढ़ाया नहीं जा सकता, तो विद्यार्थी इसे कैसे जान पाएगा? इसका उत्तर शिक्षाविद् देते हैं कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपने लिए ज्ञान का पुनः सृजन करना होगा। ज्ञान का पुनः सृजन करने का क्या अर्थ है? एक सार्थक अर्थ में समझें तो सीखने के सिद्धांत और रणनीतियां प्रश्न को नए प्रश्नों में बदल लेने और अंततः ऐसे उत्तरों की ओर ले जाने के लिए छात्र को सक्षम बनाते हैं, जिन तक अन्य लोग ज्ञान की अपनी मूल खोज में पहले पहुंच चुके होते हैं। फिर भी प्रत्येक विद्यार्थी को उचित निर्देश और मार्गदर्शन में इन उत्तरों तक स्वयं पहुंचने की बात है। हमारा शिक्षण सीखने की इन रणनीतियों पर केंद्रित होना चाहिए। मौजूदा समय की चुनौतीयां विविध क्षेत्रों में अत्यधिक उन्नत ज्ञान की मांग करती है। इसलिए हमारा शिक्षण पद्धति–उन्मुख होना चाहिए। किसी विषय को पढ़ाने के बजाय, हमें यह सिखाना चाहिए कि किसी विशेष विषय को कैसे सीखा जाए। दूसरे शब्दों में, हमारी शिक्षा को शिक्षण–उन्मुख की जगह सीखना–उन्मुख बनाना चाहिए। छात्रों को, जब वे स्कूल और कॉलेज में हों, तो विषय की सामग्री सीखने का नहीं, बल्कि यह सीखने का लक्ष्य होना चाहिए कि कैसे सीखें।

हमारी शिक्षा प्रणाली में जब कभी यह परिवर्तन होगा तब हमारी प्राथमिकताएं भिन्न होंगी तथा हमारे शैक्षिक मूल्य बदल जाएंगे। हमारे पास तब भी स्कूल और कॉलेज होंगे, लेकिन हम एक निश्चित पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों के एक निश्चित सेट तथा परीक्षाओं की एक निश्चित व्यवस्थान पर जोर देना बंद कर देंगे। हमारा जोर होगा विद्यार्थी की अपनी पहल पर। उसे अपने अध्ययन के क्षेत्र का स्वयं अन्वेषण करना सिखाया जाएगा। इस प्रकार वह अपनी पाठ्य पुस्तकों की तुलना में पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला को अधिक उपयोगी पाएगा। एक व्याख्यान की तुलना में एक चर्चा–सेमिनार उसके लिए अधिक उपयोगी साबित होगी। वर्तमान परीक्षाएं यह नहीं

परखतीं कि शिक्षक अपने विद्यार्थियों को क्या सिखाना चाहता है। नई व्यवस्था में शिक्षक को परीक्षणों के निर्माण में अधिक समय तथा प्रयास लगाना पड़ेगा जो न केवल विद्यार्थी की सीखने की रणनीतियों को लागू करने की क्षमता की वास्तविक परीक्षा होंगे बल्कि उसकी अपनी शिक्षण की रणनीतियों में सहायता करने वाले रचनात्मक प्रयास भी होंगे। इस नई व्यवस्था में अच्छे शिक्षक की छवि उसकी वर्तमान छवि से भिन्न होगी। वह अब ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जिसके पास व्याख्यान करने की क्षमता है, क्योंकि अक्सर शिक्षक में यह क्षमता विद्यार्थी की अभिव्यक्ति क्षमता को दबा देती है। वह ऐसा व्यक्ति भी नहीं होगा जो अपने विषय को अच्छी तरह जानता हो और निरंतर प्रवाह के साथ व्याख्यान देता हो, क्योंकि यद्यपि ऐसा शिक्षक विद्यार्थियों की प्रशंसा पाता है, मगर वास्तव में वह विद्यार्थियों को अपनी हीनता की भावना से दबाता है। सीखने पर आधारित शिक्षा में, एक शिक्षक की सफलता का मूल्यांकन इस बात से किया जाएगा कि वह विद्यार्थियों को किस हद तक वे रणनीतियां और योग्यताएं प्रदान कर पाता है, जिनके कारण शिक्षक का ज्ञान के क्षेत्र में प्रयास सफल हुआ है। उदाहरण के लिए, हम न केवल यह अपेक्षा करेंगे कि शिक्षक स्पष्टवक्ता हो, बल्कि यह भी कि वह अपने विद्यार्थियों को स्पष्टवक्ता बनाने में भी सक्षम हो। स्पष्टवक्ता की क्षमता सीखने की एक महत्वपूर्ण रणनीति है। असंगत अभिव्यक्ति असंगत सोच का संकेत होती है। हमें अपनी शैक्षिक प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में अभिव्यक्ति क्षमता को, सीखने की क्षमता के समान ही महत्व देना सीखना होगा। कमजोर अभिव्यक्ति न केवल सीखने को प्रभावित करती है, बल्कि अक्षमता संबंधी जटिलताओं को जन्म देकर विद्यार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व को नुकसान पहुंचाती है। वास्तव में अभिव्यक्ति का प्रशिक्षण सीखने की रणनीतियों और ज्ञान के अर्जन से हमेशा एक कदम आगे होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति जो अवधारणा बना सकता है और जो व्यक्त कर सकता है, उसके बीच एक अंतर होता है। जब तक अभिव्यक्ति क्षमता सीखने की क्षमता से अधिक नहीं होती, तब तक विचारों के सुसंगत निर्माण में सहायता करने वाली अभिव्यक्ति की प्रक्रिया, जो बदले में आगे के विचारों की ओर ले जाती है, जिसके परिणामस्वरूप सुसंगत अभिव्यक्ति की और अधिक आवश्यकता होती है, कभी शुरू नहीं हो सकती।

इस प्रकार, विषय-वस्तु के शिक्षण पर जोर न दिए जाने से, विषय-वस्तु के बारे में जानकारी होना शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण गुण नहीं रह जाएगा, बल्कि अध्ययन के क्षेत्र में व्यावहारिक अनुप्रयोगों द्वारा रणनीतियों पर रचनात्मक नियंत्रण, उसकी वरीयता में होगा। वर्तमान में, बहुत से मामलों में, विषय को अच्छी तरह से जानने का अर्थ, सभी उत्तरों को पहले से जानने से अधिक कुछ नहीं है। जो छात्र उत्तर नहीं जानते, वे स्वयं को हीन समझते हैं और ज्ञानवान शिक्षक के प्रति पूरी तरह से आदरभाव रखते हैं। इस तरह की स्थिति विधि-उन्मुख शिक्षण में सबसे अधिक अवांछनीय होगी। कुछ मामलों में शिक्षक शायद उत्तरों को पहले से जानने में असमर्थ होगा। यदि शिक्षक असाधारण रूप से प्रतिभाशाली है, जिसमें नकल और कल्पना के गुण शामिल हैं, तो वह उत्तरों को जानने के बावजूद सक्षम शिक्षण करने में सक्षम हो सकता है। रचनात्मक शिक्षण साहसिक शिक्षण होगा - ऐसा शिक्षण जिसमें शिक्षार्थी की सफलता शिक्षक की प्रतिष्ठा बचाने की चिंता से पहले होगी। रचनात्मक शिक्षण में, जो एक अच्छे शिक्षक की वास्तविक परीक्षा होगी है, शिक्षक एक ऐसी समस्या प्रस्तुत करके शुरू करेगा जिसका उसके पास स्वयं कोई पूर्व-परीक्षणित उत्तर नहीं है। इसके लिए समस्या को इस तरह से सूत्रबद्ध करने में बहुत अधिक सरलता की आवश्यकता होगी कि छात्रों के अपेक्षाकृत निम्न स्तर के परिष्कार पर भी, समस्या को उसी जिज्ञासा और उलझन के साथ पहचाना जाए जो शिक्षक उसके लिए लाता है। इसके अलावा, समस्या के निहितार्थों और शाखाओं के माध्यम से छात्रों का मार्गदर्शन करने, अन्यत्र इसके संबंधों और नतीजों के माध्यम से अंततः इसके समाधान के संभावित तरीकों तक पहुंचने में महान शिक्षण क्षमता की आवश्यकता होगी। इस सब के दौरान, शिक्षक के पास कोई पूर्वकल्पित उत्तर नहीं होता है: वह वास्तव में विद्यार्थियों पर काम करने के बजाय उनके साथ काम करेगा, वह भी उलझेगा, और कभी-कभी अप्रत्याशित घटनाओं से आश्चर्यचकित होगा। इस प्रकार शिक्षक और छात्र एक साथ मिलकर काम करते हैं। शिक्षक और शिष्य के बीच भाईचारे की भावना विकसित हुई है जिसका प्रभाव कक्षा की दीवारों को पार कर जाएगा।❑

कला का समुदायों से सम्बन्ध

❑

इंडिया इम्पैक्ट शेरपाज़ के सह-संस्थापक रघु सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में कला के विभिन्न माध्यमों की भूमिका पर काम कर रहे हैं। उनका यह आलेख हम इंडिया डेवलपमेंट रिव्यू (आईडीआर) से लेकर संपादित रूप में यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। ❑ सं.

❑

रघु गुल्लापल्ली

पिछली कई सदियों से भारत के विविध समुदायों का कला के साथ गहरा संबंध रहा है। इसमें मौखिक परंपराएं, रंगमंच, संगीत, नृत्य और कविता जैसी कई कलाएं उल्लेखनीय हैं। ऐसी बहुत सी कलात्मक अभिव्यक्तियां देशभर में त्योहारों, सामुदायिक जमावड़ों और सांस्कृतिक उत्सवों का अभिन्न हिस्सा रही हैं। ये न केवल अपनी पहचान की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, बल्कि कहानी कहने का प्रभावशाली जरिया भी हैं।

कई उदाहरण यह दिखाते हैं कि कला केवल अहम सामाजिक मुद्दों के प्रचार-प्रसार का माध्यम नहीं है, बल्कि इसके जरिए निजी अनुभवों और सांस्कृतिक विरासत के आधार पर समुदायों से बेहतर रूप से जुड़ा जा सकता है। मौजूदा समय में भारत के कुछ सामाजिक उद्देश्य संगठन (एसपीओ) विभिन्न कलाओं से सामाजिक क्षेत्र के कई विषयों पर काम करने का प्रयास कर रहे हैं।

संवाद, सहयोग, धैर्य, कल्पनाशक्ति और तार्किकता को उभारने में कला बड़ी भूमिका निभा सकती है। इससे बच्चों को रचनात्मक और भावनात्मक रूप से फलने-फूलने

में मदद मिलती है। कला वंचित समुदायों के लिए अपनी कहानियां और अनुभव साझा करने का एक प्रभावशाली माध्यम बन सकती है। कला केवल प्रजनन स्वास्थ्य और मासिक धर्म जैसे जटिल विषयों पर ही नहीं, बल्कि रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी लैंगिक भूमिकाओं और पहचान पर बात करने के लिए भी एक सुरक्षित परिवेश तैयार करती है।

अभिव्यक्ति और उपचार (हीलिंग) के लिए जरूरी सुरक्षित परिवेश तैयार करने में भी संगीत, रंगमंच और चित्रकला जैसी कलाओं का उपयोग किया जा सकता है।

कला अलग-अलग तबकों और हुनर वाले कलाकारों की आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन भी है।

सामाजिक बदलाव के लिए कला को व्यापक रूप से न अपनाए जाने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसे आमतौर पर संप्रभु वर्ग की संपत्ति के रूप में देखा जाता है, न कि रोजमर्रा के जीवन के एक अभिन्न अंग की तरह। कला को आमतौर पर बड़े शहरों के भव्य मंचों और दीर्घाओं से जोड़ा जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि भारत में ये हमेशा से आम जनजीवन का अहम हिस्सा रही है।

चूंकि कला को एक धनाढ्य या अलग-थलग गतिविधि के रूप में देखा जाता है, इसलिए इस पूर्वाग्रह का असर इस से जुड़ी फंडिंग में भी साफ झलकता है। अगर कला को सामाजिक बदलाव या आम जीवन का हिस्सा ही नहीं समझा जाएगा, तो फंडर भी इसमें निवेश करने से कतरायेंगे। विशेषकर इसलिए, क्योंकि न तो इसके नतीजे तुरंत दिखते हैं और न ही उन्हें आसानी से मापा जा सकता है।

फंडरों को कला में अपनी भागीदारी को महज एक संरक्षणात्मक नजरिये से देखने के बजाय, उसे एक सतत और सामुदायिक निवेश की तरह देखने की जरूरत है, ताकि कला समाज के अलग-अलग क्षेत्रों में सुलभ, प्रासंगिक और प्रभावशाली बन पाए। ❑

प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन की सीईओ इस लेख में सबके लिए प्रीस्कूल शिक्षा प्राप्त करने की दिशा में भारत की प्रगति पर विमर्श करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के दृष्टिकोण के अनुरूप, 2030 तक प्रारंभिक बचपन की शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता को रेखांकित कर रही हैं। ❑ सं.

❑

रुक्मिणी बनर्जी

सबके लिए प्रीस्कूल सपने को वास्तविकता बनाना है!

❑

वर्ष 2020 से 2022 को दो कारणों से याद किया जाएगा। एक, महामारी के कारण, देश भर में लगभग दो साल तक स्कूल बंद रहे। दूसरा, इसी अवधि में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (छएझ) 2020 आई और नीति को व्यवहार में लाने की तैयारियाँ पूरी गंभीरता से शुरू हुईं। इस नीति द्वारा लाया गया एक बड़ा बदलाव शिक्षा प्रणाली के हिस्से के रूप में तीन से छह वर्ष की आयु को एकीकृत करना और उस पर ध्यान केंद्रित करना था। इस बदलाव ने बच्चों की शिक्षा के लिए मजबूत नींव बनाने के मामले में देश के लिए अपार और महत्वपूर्ण नए अवसर खोले। नीति में कहा गया है कि हमें 2030 तक प्रारंभिक बाल शिक्षा का सार्वभौमिक प्रावधान करना होगा। नीति में इसे विभिन्न मार्गों के माध्यम से चरणबद्ध तरीके से पूरा करने की परिकल्पना की गई है। बच्चों को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित आंगनवाड़ी केंद्रों, सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की प्री-प्राइमरी कक्षाओं या निजी स्कूलों में नामांकित करना इसमें शामिल है। आणि शिक्षा नीति की एक अन्य प्रमुख सिफारिश है ईसीसीई के पाठ्यक्रम और शिक्षण में विशेष रूप से प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं/शिक्षकों की भर्ती करना ताकि पांच वर्ष की आयु से पहले प्रत्येक बच्चे के लिए 'प्रारंभिक कक्षा' की तैयारी कराई जा सके।

भारत नई शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्यों को पूरा करने के मामले में कितना आगे बढ़ पाया है? इस प्रश्न का उत्तर देने का एक संभावित स्रोत असर रिपोर्ट है। उपलब्ध असर डेटा का विश्लेषण करने से तीन स्पष्ट रुझान सामने आते हैं: पहला सार्वभौमिक प्रीस्कूल कवरेज की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है। हम देख सकते हैं कि 2024 तक, ग्रामीण भारत में तीन साल के तीन-चौथाई से अधिक बच्चे और चार साल के 83 प्रतिशत से अधिक बच्चे किसी न किसी रूप में प्रीस्कूल में नामांकित हैं।

सार्वभौमिक प्री-स्कूल कवरेज का महत्व स्कूल-तैयारी के लिए उतना ही है जितना कि बच्चे के समग्र विकास और कल्याण के लिए। उसे आंगनवाड़ी प्रणाली का हिस्सा बना कर, बच्चों को टीकाकरण और स्वास्थ्य कवरेज और पोषण संबंधी सहायता मिल सकती है।

इसलिए, यह सुनिश्चित करना कि तीन साल की उम्र से ही बच्चे प्रीस्कूल केंद्र में नामांकित हों, एक जरूरी और उच्च प्राथमिकता वाला कार्य है।

असर 2024 के डेटा से पता चलता है कि पांच साल के बच्चों में से अधिकांश (71.4 प्रतिशत) प्री-प्राइमरी या प्रारंभिक बाल संस्थानों में नामांकित हैं। बाकी के लिए, 22 प्रतिशत औपचारिक स्कूल (आमतौर पर ग्रेड 1 में) में हैं और शेष 6.2 प्रतिशत कहीं भी नामांकित नहीं हैं। प्रीस्कूल क्षेत्र में, एक तरफ आंगनवाड़ी और दूसरी तरफ निजी प्री-स्कूल ग्रेड प्रमुख श्रेणियां हैं। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में प्री-प्राइमरी ग्रेड का एक दिलचस्प रुझान भी उभर रहा है। हालांकि, जब हम समय के साथ राज्यों पर करीब से नज़र डालते हैं, तो पांच साल के बच्चों के लिए तस्वीर काफी हद तक अलग-अलग मिलती है।

पांच साल के बच्चों के आंगनवाड़ी में नामांकन में वृद्धि हुई है, जो सरकारी स्कूलों में ग्रेड 1 में भाग लेने वाले पांच साल के बच्चों की संख्या में गिरावट के साथ मेल खाता है।

गुजरात में तस्वीर काफी अलग है। 2018 में, गुजरात में पांच साल के 67 प्रतिशत बच्चे प्रीस्कूल में थे। 2024 तक, यह संख्या बढ़कर लगभग 93 प्रतिशत हो गई। सरकारी स्कूलों में प्री-प्राइमरी ग्रेड की शुरुआत के परिणामस्वरूप यह बड़ा बदलाव आया है।

कुछ विपरीत मामलों पर नज़र डालें तो तीन उत्तरी राज्य - पंजाब, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा के उदाहरण हैं जहां निजी प्री-स्कूलिंग अधिक है और पांच साल के बच्चों का आंगनवाड़ी नामांकन बहुत कम है।

पंजाब और हिमाचल प्रदेश दोनों ने नई शिक्षा नीति 2020 के लॉन्च होने से कई साल पहले सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में प्री-प्राइमरी कक्षाओं में निवेश करना शुरू कर दिया था। 2024 तक, हिमाचल में पांच साल के करीब 28 प्रतिशत और पंजाब में लगभग 22 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में प्रारंभिक कक्षाओं में भाग ले रहे होंगे। 2018 और 2024 के बीच की अवधि में, पंजाब में निजी प्रीस्कूलों में नामांकन में गिरावट (57 प्रतिशत से 49 प्रतिशत तक) देखी गई है। हिमाचल प्रदेश में, 2018 और 2024 के बीच, सरकारी स्कूलों और निजी स्कूलों दोनों में ग्रेड 1 में प्रवेश करने वाले पाँच साल के बच्चों की संख्या में गिरावट आई है। हरियाणा में जो मुख्य बदलाव दिखाई दे रहा है, वह यह है कि सरकारी और निजी दोनों स्कूलों में पांच वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या में कमी आई है, तथा निजी प्रीस्कूलों में नामांकन में वृद्धि हुई है।

अपने बच्चों के लिए उच्च शैक्षिक आकांक्षाओं वाले माता-पिता अक्सर महसूस करते हैं कि बच्चों के लिए अधिक स्कूली शिक्षा वर्ष बेहतर है और इसलिए वे कम उम्र में ही बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलाने के इच्छुक हैं। वास्तव में, अधिकांश निजी स्कूल, यहां तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी, बच्चों को सीधे ग्रेड 1 में प्रवेश नहीं देते हैं। निजी स्कूल के बच्चे अक्सर औपचारिक स्कूल के पहले वर्ष में आने से पहले निचले केजी और ऊपरी केजी में एक से दो साल बिताते हैं। ग्रेड 1 को बहुत जल्दी शुरू करना उचित नहीं है। ग्रेड स्तर की पाठ्यचर्या संबंधी अपेक्षाओं से निपटने में सक्षम होने के लिए, बच्चे को संज्ञानात्मक रूप से तैयार होना चाहिए। नीति और व्यवहार दोनों के लिए, औपचारिक स्कूली शिक्षा में प्रवेश की आयु यानी ग्रेड 1 शिक्षा प्रणाली के लिए एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक मुद्दा है। केंद्रीय और राज्य स्तर पर, एनईपी 2020 की प्रमुख सिफारिशों को लागू करने के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक ग्रेड 1 में प्रवेश के लिए छह वर्ष की आयु को उचित आयु के रूप में अनिवार्य करना है।

जैसे-जैसे भारत गुणवत्तापूर्ण सार्वभौमिक प्री-प्राइमरी प्रावधान की ओर बढ़ रहा है, कई बातों को ध्यान में रखना होगा। जैसे लागत संबंधी विचार और बजटीय आवंटन, साथ ही गुणवत्तापूर्ण प्रीस्कूल/प्रारंभिक कक्षा के लिए एक समर्पित और प्रशिक्षित शिक्षक की आवश्यकता। जिन राज्यों में आंगनवाड़ी कवरेज अधिक है, वहां आने वाले वर्षों के लिए प्रशिक्षण का काम महत्वपूर्ण होगा। नई शिक्षा नीति 2020 का भी यही अनिवार्य आदेश है। सरकार के दो अंगों - शिक्षा मंत्रालय और महिला एवं बाल विकास मंत्रालय - के बीच तालमेल आवश्यक है।

एक देश के रूप में हमने अपने बच्चों को ग्रेड 3 तक पहुंचने तक बुनियादी शिक्षण कौशल हासिल करने में मदद करने के लिए एक बहुत ही आशाजनक शुरुआत की है। सार्वभौमिक प्रीस्कूलिंग भारत के लिए एक सपना नहीं है। हम इस देश के सभी बच्चों के लिए इसे वास्तविकता बनाने की दिशा में अच्छी तरह से आगे बढ़ रहे हैं।❑

बदला लेने की भावना!

❑

❑

जेम्स किमेल जूनियर

लेखक येल स्कूल ऑफ मेडिसिन में मनोचिकित्सा के लेक्चरर हैं। यह निबंध उनकी नई किताब, द साइंस ऑफ रिवेंज: अंडरस्टैंडिंग द वर्ल्ड्स डेडलीस्ट एडिक्शनएंड हाउ टू ओवरकम इट से लिया गया है। ❑ सं.

क्या आप बदला लेने के आदी हो सकते हैं? दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में न्यूरोसाइंटिस्ट स्कैनिंग तकनीक का इस्तेमाल करके यह अध्ययन करने लगे हैं कि जब आप बदला लेना चाहते हैं तो आपके दिमाग में क्या होता है? यह पता चला कि बदला लेने पर आपके दिमाग में वैसा ही होता दिखाता है जैसा ड्रग्स लेने पर दिमाग में होता है।

किसी को नुकसान पहुँच पहुंचाया जाना या गलत तरीके से व्यवहार किया जाना, या क्रोध, घृणा, अपराधबोध या शर्म का अनुभव करना, मस्तिष्क के दर्द नेटवर्क को सक्रिय करता है – विशेष रूप से, एक मस्तिष्क संरचना जिसे इंसुला कहते हैं। बदला लेना, या यहां तक कि इसके बारे में कल्पना करना, डोपामाइन जारी करता है और खुशी की भावनाएं पैदा करता है जो दर्द को ढक देता है और कुछ समय के लिए संतुलन बना देता है। हालांकि, ड्रग्स और शराब के साथ, प्रभाव जल्दी खत्म हो जाते हैं।

हम सभी ने सामाजिक मानदंडों का उल्लंघन करने वाले या हमारे साथ दुर्व्यवहार करने वाले लोगों को दंडित करने की इच्छा का अनुभव किया है। हम में से अधिकांश लोग इन इच्छाओं को नियंत्रित करते हैं, शायद कुछ समय के लिए उन अच्छी लगने वाली भयानक चीजों के बारे में कल्पना करते हैं जो हम अपने जीवन में आगे बढ़ने से पहले करना चाहते हैं, फिर अतीत के दर्द को अतीत में छोड़ देते हैं। लेकिन हर कोई इतना सफल नहीं होता, सभी शिकायतें एक जैसी नहीं होतीं, या सभी एक ही तरह से अनुभव नहीं की जाती है और हम हमेशा अपने बदला लेने की लालसा को नियंत्रित नहीं कर पाते।

मानव इतिहास बाध्यकारी बदला लेने की भयावह उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिसमें पारस्परिक हिंसा के क्रूर कृत्यों से लेकर राष्ट्र-स्तरीय संघर्ष शामिल हैं। अब जब हम बदला लेने के लिए प्रेरित हिंसा की नशे की भांति लत के बारे में जानते हैं, तो हम इसका प्रतिकार करने के लिए लत-उन्मूलन दृष्टिकोण का उपयोग करना भी शुरू कर सकते हैं।

न्यूरोसाइंस ने हाल ही में बदला लेने की लत और हिंसा से निबटने का एक सरल और अधिक शक्तिशाली तरीका भी सुझाया है। इसे माफ़ी कहा जाता है।

यूसीएलए में एक ब्रेन-स्कैन अध्ययन में पाया गया कि जिन प्रतिभागियों ने बदला लेने के बजाय माफ़ करना चुना, उनके मस्तिष्क के दर्द नेटवर्क और इनाम सर्किटरी में गतिविधि कम हो गई, और उनके आत्म-नियंत्रण सर्किटरी में गतिविधि बढ़ गई।

इससे पता चलता है कि माफ़ी एक मुफ़्त में उपलब्ध चमत्कारी दवा है जो शिकायतों के दर्द को कम करती है। वे न कि केवल छुपाती है, बल्कि बदला लेने की लालसा को खत्म करती है।

अब हमारे पास जीसस और बुद्ध की प्राचीन क्षमा शिक्षाओं के लिए न्यूरोसाइंस का समर्थन है। निश्चित रूप से, बदला हर जगह है।

क्या हम एक पूरे देश की मदद कर सकते हैं जो बदला लेने का आदी हो गया है? यह उतना मुश्किल नहीं जितना लगता है। हमें बस आधुनिक विज्ञान और क्षमा के बारे में प्राचीन शिक्षाओं का पालन करने की आवश्यकता है। हमें फिर से क्षमा करने वाला बनने की आवश्यकता है। ❑

लेख

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का पता लगाने की वैज्ञानिकों में अनोखी होड़

❑

पल्लब घोष

❑

अमेरिका में साउथ डकोटा के जंगलों की धुंध से ढकी एक प्रयोगशाला में, अध्यायन-कर्ता विज्ञान की सबसे बड़ी गुत्थी का जवाब खोज रहे हैं। यह गुत्थी है कि- हमारा ब्रह्मांड क्यों मौजूद है?

हालांकि जापानी वैज्ञानिकों की एक अलग टीम उनके साथ रेस में है और वे इस मुक़ाबले में कई साल आगे चल रहे हैं।

ब्रह्मांड कैसे अस्तित्व में आया और हमें दिखाई देने वाले ग्रहों, तारों और आकाश गंगाओं के अस्तित्व की वजह क्या है, इसकी सटीक व्याख्या अब तक नहीं हो पाई है। गुत्थी को सुलझाने के लिये दोनों टीमें ऐसे डिटेक्टर बना रही हैं जिनसे न्यूट्रिनो नामक एक सब-एटॉमिक पार्टिकल का अध्ययन किया जाना है।

अमेरिका के नेतृत्व वाली इस रिसर्च से आशा है कि वो ब्रह्मांड की उत्पत्ति से जुड़े जवाब 'डीप अंडरग्राउंड न्यूट्रिनो एक्सपेरिमेंट' (डून) के ज़रिए खोजेगी। इस रिसर्च के तहत वैज्ञानिक धरती की सतह से 1,500 मीटर नीचे तीन विशाल भूमिगत सुरंगों में जाएंगे। यह सुरंगें इतनी बड़ी हैं कि इनमें दाख़िल होने वाले वैज्ञानिक और उनके बुलडोज़र छोटे प्लास्टिक के खिलौनों जैसे लगते हैं।

इस फ़ेसिलिटी के साइंस डायरेक्टर डॉ. जेरेट हेज़ इन विशाल सुरंगों को 'कैथेड्रल टू साइंस' यानी 'विज्ञान का गिरजाघर' कहते हैं। डॉ. हेज़ सैनफ़र्ड अंडरग्राउंड रिसर्च फ़ेसिलिटी (सर्फ़) में इन सुरंगों के निर्माण में लगभग 10 सालों से शामिल रहे हैं। बाहरी दुनिया से आने वाले शोर और विकिरणों से बचने के लिए डून को सील किया गया है। अब डून अगले चरण के लिए तैयार है।

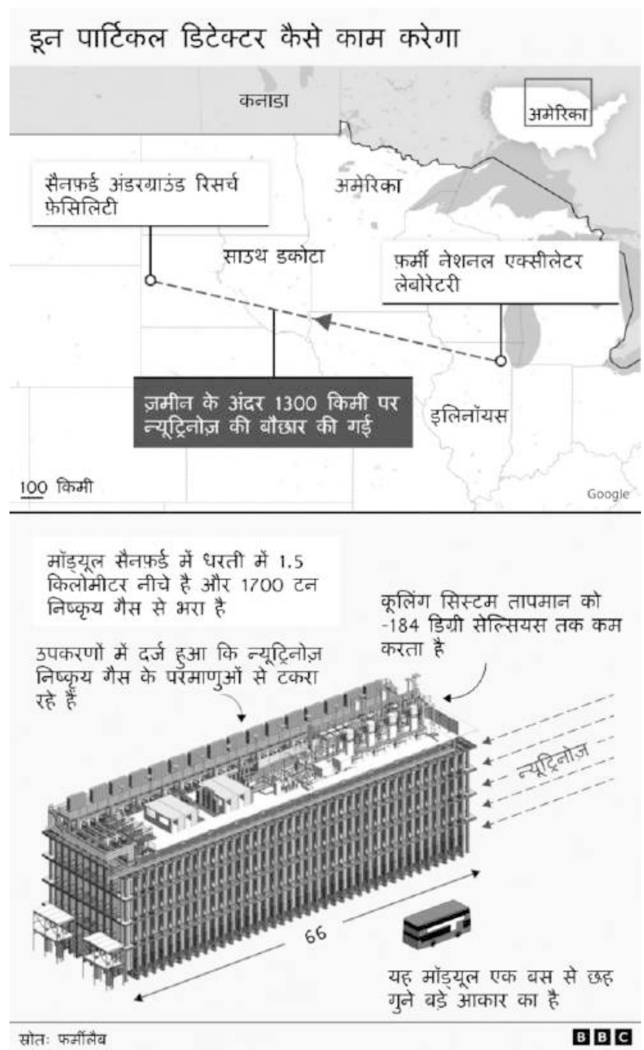

माना जा रहा है कि वैज्ञानिक ऐसे डिटेक्टर का निर्माण करने के लिए तैयार हैं जो ब्रह्मांड के बारे में हमारी समझ को बदल देगा। इसके लिए 35 देशों के 1,400 से अधिक वैज्ञानिकों के सहयोग से इस सवाल का जवाब तलाशने की कोशिश होगी कि हमारा अस्तित्व क्यों है।

जब ब्रह्मांड का निर्माण हुआ तो दो प्रकार के पार्टिकल बने: मैटर

(पदार्थ), जिससे तारे, ग्रह और हमारे आस-पास की हर चीज़ बनी है। इसके साथ उतनी ही मात्रा में, एंटीमैटर यानी पदार्थ का बिल्कुल विपरीत तत्व बना। सैद्धांतिक रूप से दोनों को एक दूसरे को नष्ट कर देना चाहिए था, जिससे ऊर्जा का एक बड़ा विस्फोट होने के अलावा कुछ नहीं बचता। मगर पदार्थ के रूप में हमारा वजूद मौजूद है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि पदार्थ क्यों जीता और हम क्यों मौजूद हैं इसका जवाब, न्यूट्रिनो नामक एक पार्टिकल और उसके विपरीत एंटीमैटर यानी एंटी-न्यूट्रिनो का अध्ययन करने से मिल सकता है। वे इलिनॉय में गहरी भूमिगत फ़ेसिलिटी से 800 मील दूर साउथ डकोटा में डिटेक्टरों तक दोनों तरह के पार्टिकल की बौछार करेंगे। जब पार्टिकल न्यूट्रिनो और एंटी-न्यूट्रिनो यात्रा करते हैं तब उनमें बहुत कम बदलाव होता है।

वैज्ञानिक ये पता लगाना चाहते हैं कि क्या न्यूट्रिनो और एंटी-न्यूट्रिनो में ये बदलाव अलग-अलग होते हैं? अगर वे अलग-अलग हैं, तो इससे उन्हें इस बात का जवाब मिल सकता है कि मैटर और एंटी-मैटर एक-दूसरे को पूरी तरह नष्ट क्यों नहीं करते।

डून एक अंतरराष्ट्रीय सहयोग है। इस अध्ययन में शामिल वैज्ञानिकों में ससेक्स यूनिवर्सिटी की डॉ. केट शॉ बताती है कि भविष्य में होने वाली खोजें ब्रह्मांड की हमारी समझ और मानवता के खुद के नज़रिए के लिए 'परिवर्तनकारी' होंगी।

यह वास्तव में उत्साहजनक है कि हमारे पास अब टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग और कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का हुनर है, जिसके बूते हम इन बड़े सवालों के जवाब खोज सकते हैं।

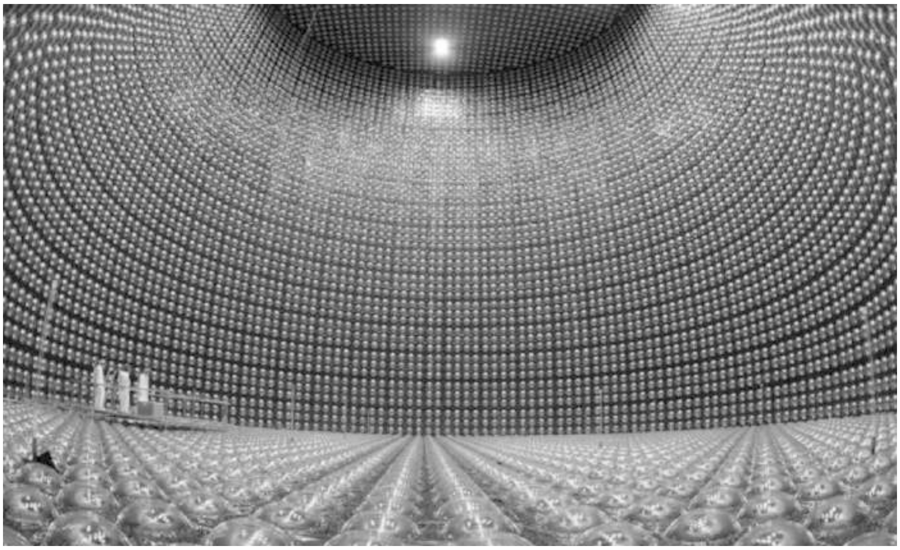

जापानी वैज्ञानिक सुनहरे ग्लोब का उपयोग कर रहे हैं।

उधर जापानी वैज्ञानिक उसी जवाब की खोज के लिए चमकते हुए सुनहरे ग्लोब का उपयोग कर रहे हैं। अपनी पूरी भव्यता में चमकता यह 'विज्ञान के मंदिर' जैसा है, जो 9,650 किमी दूर साउथ डकोटा में स्थित गिरजाघर के आकार का है। वैज्ञानिक यहां 'हाइपर-के' का निर्माण कर रहे हैं - जो उनके मौजूदा न्यूट्रिनो डिटेक्टर, 'सुपर-के' का एक बड़ा और बेहतर संस्करण होगा।

जापानी वैज्ञानिकों के नेतृत्व वाली टीम तीन साल से भी कम समय में अपने न्यूट्रिनो बीम को चालू करने के लिए तैयार हो जाएगी, जो अमेरिकी परियोजना से कई साल पहले है। डून की तरह ही, 'हाइपर-के' एक अंतरराष्ट्रीय सहयोग है।

लंदन के इंपीरियल कॉलेज के डॉ. मार्क स्कॉट का मानना है कि यह टीम ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में अब तक की सबसे बड़ी खोजों में से एक को करने की स्थिति में है। वो कहते हैं, यहां हमारे पास एक बड़ा डिटेक्टर है, इसलिए हमें डून के मुकाबले जल्दी ही अधिक संवेदनशील जानकारियां मिलनी चाहिए।

दोनों ही प्रयोग एक साथ चलाने का मतलब है कि वैज्ञानिक ज़्यादा सीखेंगे, लेकिन, वे कहते हैं, मैं अमेरिका में हो रही कोशिश से पहले नतीजे हासिल करना चाहूंगा!

डून प्रोजेक्ट में काम करने वाली और लंदन की क्वीन मैरी यूनिवर्सिटी की डॉ. लिंडा क्रेमोनेसी कहती हैं, इसमें एक रेस का भाव तो है ही, लेकिन हाइपर-के में अभी तक वे सभी तत्व नहीं हैं जिनसे उन्हें न्यूट्रिनो और एंटी-न्यूट्रिनो के अलग-अलग व्यवहार का पता चल सके।

यह रेस भले ही जारी हो, लेकिन इसके नतीजे आने में कुछ साल लगेंगे जब हम जान पाएंगे कि समय की शुरुआत में ऐसा क्या हुआ होगा कि हम अस्तित्व में आए। तब तक यह सवाल रहस्य ही बना रहेगा। ❑

पुस्तक चर्चा

मानव कहलाने लायक चेतना!

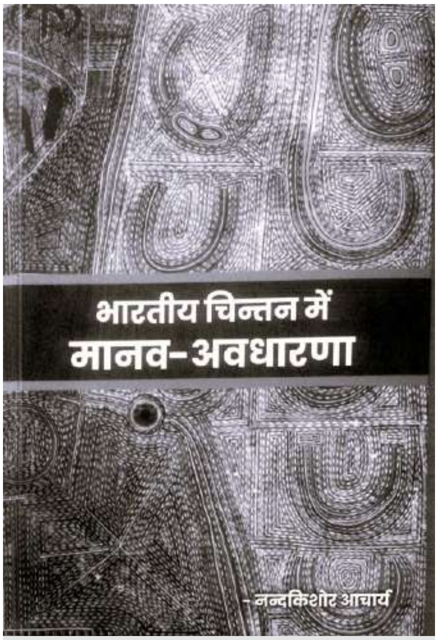

नन्दकिशोर आचार्य ने इस सद्य प्रकाशित पुस्तक में भारतीय चिंतन परंपरा मानव की अवधारणा को वैदिक साहित्य, श्रमण परंपरा षड्दर्शन और पौराणिक चिंतन, महाकाव्य चेतना, भक्ति काव्य एवं आधुनिक युगीन चेतना के वैचारिक संदर्भों द्वारा व्याख्यायित व विवेचित किया है। इसमें मानव और उसकी चेतना में धर्म–आध्यात्म की स्थिति, ईश्वर की अवधारणा और मानव चेतना, सनातन मूल्य और नियमों के मानवी फैलाव, मानव नैतिकता के बुनियादी सवाल, सार्वभौमिक एकत्व, मानव, प्रकृति और मानवेतर जगत में अंतस्सूत्रता, मानव सभ्यता के मूलभूत प्रश्न और चिंताएं भी हैं।❑ सं.

❑

यह पुस्तक हिन्दी जगत में उस सनातन भारतीय मानव चेतना को दर्शाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध होगी।

आईटीएम यूनिवर्सिटी, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक के प्रकाशकीय में विश्वविद्यालय के 'गांधियन सेंटेर ऑव डेमोक्रेसी एंड सोशल इक्विटी' के केंद्राध्यक्ष डॉ. आलोक बाजपेयी सही लिखते हैं कि आज दुनिया में जो एक तत्व सबसे संकटग्रस्त है, वह है मानव कहलाने लायक चेतना। आचार्य जी विषय प्रवेश में ही स्पष्टकर देते हैं कि धर्मों और संप्रदायों में मानव क्या है? प्रश्न का उत्तर 'मानव को क्या होना चाहिए' के आधार पर दिया गया है इसलिए प्राकृतिक विज्ञानों अथवा समाज–विज्ञानों द्वारा दिये गये उत्तरों के साथ मानव–अस्तित्व के नैतिक–आध्यात्मिक आयामों को समाहित किये बिना कोई प्रामाणिक उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता। आचार्य जी मानते हैं कि मानव की वास्तविकता और उसकी संभावना दोनों के संयोग से ही उसकी प्रामाणिक अवधारणा पायी जा सकती है।

पुस्तक में विषय को छह अध्यायों में विश्लेषित किया गया है – वैदिक अवधारणा, श्रमण अवधारणा, षटदर्शन एवं पौराणिक चिंतन, महाकाव्य, भक्ति चिंतन तथा आधुनिक चिंतन। वैदिक अवधारणा में लेखक कहता है कि भारतीय सृष्टिविद्या में, चाहे वह वैदिक हो या वेदेतर, सामी परंपरा जे विपरीत, किसी सृष्टिकर्ता और सृष्टि नियंता वैयक्तिक ईश्वर की अवधारणा नहीं की गई है। श्रमण परंपरा में जैन दर्शन भी किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर को स्वीकार नहीं करता। श्रमण परंपरा में सर्वाधिक प्रभावी रहे बौद्ध चिंतन में भी किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर को तो नहीं माना गया है। वहां तो आत्मा का भी निषेध है।

षटदर्शन एवं पौराणिक चिंतन पर विमर्श करते हुए आचार्य जी वहां भी किसी सृष्टिकर्ता के अस्तित्व में विश्वास की जगह जीवन मात्र के साथ एकत्व का बोध और उसी से प्रसूत 'सर्वभूतहित' को मानवत्व के लिए आवश्यक कर्त्तव्य अर्थात धर्म मानने की परंपरा पाते हैं।

पुस्तक में एक अध्याय महाकाव्य पर है जिसमें रामयन और महाभारत का ज़िक्र है। महाभारत को असंदिग्ध रूप से नीतिशास्त्रीय एवं दार्शनिक ग्रंथ बताते हुए उसकी उद्घोषणा 'अहिंसा परामोधर्म' पर पुस्तक में यहां तक कह दिया गया है कि हिंसा का समर्थन वही लोग करते हैं, जो धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, नास्तिक हैं तथा जिनमें आत्मा के विषय में संदेह है। आचार्यजी महाभारत के शांतिपर्व का उद्धरण देते हैं जिसमें कहा गया है हिंसा यज्ञ के लिए हितकर

नहीं है तथा अहिंसा ही सकल धर्म है। वे रामायण के बारे में कहते हैं कि वह गृहस्थ धर्म को अत्यंत महत्व देता है इसलिए पंच महायज्ञ का पालन रामायण के नीति–दर्शन का केंद्र हो जाता है।

भारतीय चिंतन परंपरा में विशिष्ट महत्व वाले भक्ति–चिंतन पर पुस्तक में कहा गया है कि इसमें मुक्ति एक अवधारणा नहीं अपितु अनुभूति है, जो जीवन में होती है, जीवनोपरान्त नहीं। हालांकि भक्ति आंदोलन के अकादमिक अध्ययन में उसे निर्गुण और सगुण दो कोटियों में बांटा गया है किन्तु उनमें ईश्वर के प्रति प्रेमप्रसूत पूर्ण समर्पण मिलता है तथा जहां कहीं भी ईश्वर के प्रति उपालंभ का भाव मिलता है, वह भी प्रेम की ही तिर्यक अभिव्यंजना है। भक्ति आंदोलन में केवल ईश्वर भक्ति का ही आग्रह नहीं है, उसके साथ एक आवश्यक साधना–प्रक्रिया के रूप में मनुष्य के लिए सृष्टि मात्र के प्रति निरपेक्ष प्रेम भी अपेक्षित है।

आधुनिक चिंतन पर विमर्श करते हुए पुस्तक में मान्यता व्यक्त की गई है कि आधुनिक दर्शन कोई एक विचार नहीं है अब दर्शन विज्ञान का नहीं, बल्कि विज्ञान दर्शन का प्रमाण बन गया है। आधुनिक चिंतन का विमर्श करते हुए अत्यंत महत्वपूर्ण बात काही गई है कि वैज्ञानिकतामूलक तर्कणा को ज्ञान प्रक्रिया का प्रमुख आधार माँ लेने का एक अनिवार्य नतीजा यह भी हुआ है कि अब किसी भी वैज्ञानिक सिद्धांत को भी अंतिम प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी का एक सह–परिणाम यह भी होता है कि अब कोई भी दर्शन प्रणाली सत्य को सम्पूर्ण और अंतिम रूप से जानने का दावा नहीं कर सकती।

आधुनिक भारतीय चिंतन में भी वे मानव की अवधारणा तत्संबंधी पारंपरिक अवधारणा का ही विस्तार एवं नाव–रूपायन जान पड़ती है। इस अध्याय में आधुनिक भारतीय चिंतन की कहानी को राजा राममोहन राय से शुरू करके रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ टैगोर और अरविन्द से होते हुए महात्मा गांधी पर आकार समाप्त होती है। महात्मा गांधी मानव अवधारणा को एक बिल्कुल नयी परिभाषा और आयाम देते हैं। निस्संदेह, वह भी मानव जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य को तो स्वीकार करते हैं, लेकिन उनके लिए नैतिक और आध्यात्मिक अभिन्न है। वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मेरे लिए नैतिक में आध्यात्मिक समाविष्ट है। गांधी के लिए सत्याग्रह अच्छाई को करना भी है और बुराई से संघर्ष भी।

आधुनिक भारतीय चिंतन में एम. एन. राय जैसे कट्टर भौतिकवादी विचारक की मानव–अवधारणा में आचार्यजी विस्मयजनक रूप से नैतिकता और सामाजिक सहकार के अनिवार्य तत्त्व पाते हैं। वे राममनोहर लोहिया को एक ऐसे विचारक मानते हैं, जो किसी ईश्वर अथवा परम आत्मा आदि के अस्तित्व को तो स्वीकार नहीं करते; लेकिन मनुष्य की उनकी अवधारणा में भौतिक और आध्यात्मिक का समन्वय जैसा कुछ मिलता है। लोहिया के लिए मानवत्व की सिद्धि आध्यात्मिक एकता की भावना से प्रेरित भौतिक समानता एवं स्वतंत्रतामूलक बंधुत्व पर आधारित अन्योन्याश्रित संबंधों की अनुभूति में है। पुस्तक का निष्कर्ष है कि भारतीय चिंतन में मानव की व्यक्तिवादी अपरिभाष्य के बजाय उसे केवल सामकीक ही नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति उत्तरदायी पानी मानते हुए इसी उत्तरदायित्व के निर्वाह में ही उसके जीवन का अर्थ और उसके मानवत्व की सिद्धि माना है।

–रा. बो..

जनसंचार माध्यम बन रहे हिन्दी भाषा के लिए संकट

❑

वैश्वीकरण के समय में जनसंचार माध्यमों में बिगड़ती हिन्दी भाषा पर प्रबुद्ध भाषाविद् का दुःख दर्शाता यह आलेख भाषा की सांस्कृतिक अहमियत को भी बताता है।❑ सं.

❑

डॉ. कन्हैयालाल खाँड़पकर

मानवीय जिजीविषा से प्राप्त उपलब्धियों में भाषा प्रमुख स्थान रखती है। हमारी सामाजिक प्रवत्तियां भाषा के माध्यम से ही प्रकट होती हैं। किसी समाज की प्रगति का इतिहास उसकी भाषा में देखा जा सकता है। भाषा के बिना किसी भए समाज का संगठन नहीं हो सकता। प्रत्येक भाषा भाषी की अपनी प्रवत्तियां होती हैं। एक मानसिक जगत होता है। भाषा एक ओर संस्कृति की वाहिका है तो दूसरी ओर संस्कृति का दर्पण। किसी भी समाज के रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, रहन-सहन तथा जीवन दर्शन उसकी भाषा में प्रतिबिंबित होते हैं। प्रत्येक भाषा की एक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है और उसी के संदर्भ में उसका स्वरूप विकसित होता है। उसकी संरचना पर भोगौलिक परिवेश का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। एक समाज के मनोजगत की विविध छवियां भाषा के माध्यम से ही प्रकट होती हैं। यह असंदिग्ध है कि किसी भी समाज के राष्ट्र की दिशा में अग्रसर होने में भाषा की यहां भूमिका होती है। राष्ट्र की निराली धज, उसके हर्ष-विषाद, वरेण्य-त्याज्य, श्री-सौरभ सभी की अभिव्यक्ति उसकी भाषा के माध्यम से ही होती है। राष्ट्र को पहिचान उसकी भाषा से ही मिलती है। यदि दुर्भाग्य से किसी समाज की भाषा मृत हो जाए तो उसकी संस्कृति भी मरणासन्न हो जाती है।

भाषा और संस्कृति में चोली-दामन का साथ है। किसी भी भाषा के वस्तु बोधक, विचार बोधक एवं भाव बोधक शब्द उस संस्कृति के भौतिक, वैचारिक एवं आध्यात्मिक घटकों को अभिव्यक्त करते हैं। संस्कृति के विभिन्न आयाम किसी न किसी रूप में भाषा में किसी न किसी स्तर पर अवश्य प्रतिबिंबित मिलेंगे। उदाहरण के लिये भारतीय संस्कृति में विनम्रता को विशेष महत्व दिया गया है, अतः हमारी भाषाओं में विनम्रता बोधक शब्द अधिक हैं, जैसे, प्रणाम, चरण स्पर्श, चरण वंदन, नमन, प्रणिपात, मत्था टेकना आदि। अंग्रेजी भाषा इस भाव के शब्दों का सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में रिश्तों-नातों से संबंधित शब्दों का बाहुल्य है परंतु अंग्रेजी इस मामले में छूँछी है। व्यक्तिवादी अंग्रेजी संस्कृति में रिश्तों को कोई अहमियत नहीं दी जाती।

सभी पुरातन भाषाएं (संस्कृत, लेटिन, ग्रीक, अवेस्ता, हिब्रू आदि) तत्कालीन संस्कृति के उपादानों को व्यक्त करती हैं।

भाषा के माध्यम से ही हम किसी क्षेत्र के भूगोल, वनस्पति, पशु-पक्षी, खान-पान, ऐतिहासिक घटनाओं, धर्म, कर्मकांड, त्यौहारों, उत्सवों, रीति-रिवाजों, वेशभूषा, शृंगार, कला, संगीत, साहित्य आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। विद्यावारिधि भगवत शरण उपाध्याय की कृति 'कालिदास का भारत' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इस तथ्य को भलीभांति उजागर करती हैं।

भाषा के पर्यायवाची शब्दों में भी उसका सांस्कृतिक पक्ष सन्निहित होता है। संस्कृत में पर्यायवाची शब्दों का बाहुल्य है, यह उसकी समृद्धि का सूचक है।

संस्कृत ने अनेक प्रतिकूलताओं के झंझावातों के समक्ष भारतीय संस्कृति के अश्वत्थ को हरा-भरा रखा है। व्याप्ति की दृष्टि से सर्वाधिक विस्तीर्ण हिन्दी भाषा का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

पश्चिम की औपनिवेशिक अधीनता के दौरान अंग्रेज शासकों ने अंग्रेजी भाषा व अंग्रेजियत को इस कदर बढ़ावा दिया कि भारतीय अपनी ही नज़रों में बौने हो गये। ब्रिटिश परमेष्ठता से हतप्रभ भारतीयों ने अपनी विरासत से जुड़ी हर चीज की अवहेलना करना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप हमारी भाषाओं को भी हे दृष्टि से देखा जाने लगा।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय एकता व गौरव भाव को पुनर्जीवन प्रदान करने में हिन्दी की सामर्थ्य को पहिचान कर उसे प्रतिष्ठित करने का भरपूर प्रयास किया। हिन्दी के लिए सम्मानभाव जंगे आज़ादी के दौरान बहूबई था। लेकिन उस सलिला को सूखा दिया गया। हिन्दी को राजनीति का मोहरा बना दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अंग्रेजी का जितना वर्चस्व था, आज उससे बढ़ कर है। हिन्दी की संभावनाओं को विकसित नहीं होने दिया गया। स्वतंत्रता से पहले भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया स्वाभाविक गति से विकसित हो रही थी वह पूरी तरह राज्याश्रित हो गई।

कोई भाषा अपने आप में असमर्थ नहीं होती। उसे ऐसा बनाया जाता है या बनने दिया जाता है। यद्यपि भारत जैसे बहुभाषी देश में कोई भाषा थोपी नहीं जानी चाहिये और लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो ऐसा संभव भी नहीं है। हिन्दी को कभी थोपा नहीं गया अपितु देश की संपर्क भाषा के रूप में अपने लचीले स्वभाव के कारण इसे सहज स्वीकृति मिली।

वैश्वीकरण की वास्तविकता से अनभिज्ञ भारतीय संचार साधन विशेषकर हिन्दी समाचार पत्र इस कदर दिग्भ्रांत हो गये हैं कि राष्ट्रभाषा के अमूलोच्छेदन की मुहिम की हरावल में आ गये है। एक समय था जब हिन्दी के अखबार विचार देते थे। चिंतक की पूंजी देते थे। लेकिन अब वे पूंजी का विचार देने में जुट गये हैं।

टॉमस फ्रीडमेन ने वैश्वीकरण की वास्तविकता को उजागर करते हुए ठीक ही कहा है कि वैश्वीकरण का अर्थ सरकारों और बहुराष्ट्रीय निगमों का पारस्परिक सम्बन्ध भर है। इसलिए इसकी सर्वप्रथम कार्यवाही यही होती है कि जिस किसी चीज से राष्ट्रीयता की गंध आए, उसे तुरंत बेदखल किया जाए। भारतीय समाज को पूरी तरह उपभोक्तावादी बनाने के अभियान में बहुराष्ट्रीय निगम जुटे हैं।

चूंकि हिन्दी भारत में संवाद, संचार और व्यापार की सबसे बड़ी भाषा बन चुकी है इसलिए वैश्वीकरण का पहला निशाना हिन्दी ही है। आज जिस हिन्दी को हम देख रहे हैं, उसे पत्रकारिता ने ही विकसित किया था क्योंकि तब की पत्रकारिता में राष्ट्र का नामक और लौह तत्व था, जो बोलता था। यहां महात्मा गांधी का एक प्रसंग उल्लेखनीय है।

स्वतंत्रता की घोषणा के बाद जब बी.बी.सी. ने उन्हें बुलाया तो उन्होंने निमंत्रण को अस्वीकार करते हुए कहा, संसार को कह दो कि गांधी को अंग्रेजी नहीं आती। गांधी अंग्रेजी भूल गया है। यह एक नवस्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण के बड़े स्वप्न का उत्तर था।

मगर हमारे नीति निर्माता यह भूल गये कि – चिरागों की तरह खुद को जालना पड़ता है/ यूं मुट्ठियां बांधने से इन्क़लाब नहीं होता। जनसंचार के माध्यमों को आत्मचिंतन करना होगा कि वे मीडिया मुग़ल बनने की लिप्सा में घोर पातक बन रहे हैं।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मानने से यह राष्ट्रीय अस्मिता की पर्याय बन गयी है। परिणामतः इस पर चढ़े राष्ट्रीयता के कवच को हटाना आवश्यक है, वर्ना यह मारे जाने में काफी समय लेगी। आज भारत बहुराष्ट्रीय निगमों का चहेता आखेट स्थल बना हुआ है। वैश्वीकरण के 'आगीवाण' हिन्दी की जड़ें खोदने में लगे हैं। ❑

बच्चों में संस्कारों की बात करना अब रूढ़ि लगने लगी है। लेखक का मानना है कि माता-पिता अपनी जिम्मेवारी से च्युत होते जा रहे हैं और नया सोशल मीडिया अपने हिसाब से बालकों को संस्कार दे रहा है। लेखक कुछ मूल्यवान संस्कारों की बात कर रहा है जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। ❑ **सं.**

❑

सदाशिव श्रोत्रिय

बच्चों में अच्छे संस्कारों की बात अब रूढ़ि लगने लगी है

❑

संस्कार वह मूल्यवान विरासत है जो माता-पिता अपने बच्चों को दे सकते हैं और जो किसी इंसान को एक बेहतर इंसान बनाने में सबसे ज़्यादा सहायक होती है। व्यक्ति को संस्कार मुख्यत: माता-पिता से मिलते हैं किंतु उनमें घर-परिवार और पड़ोस के अन्य बड़ों और शिक्षकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है । माता-पिता का यह सामाजिक और नैतिक दायित्व है कि वे उन्हें उपयुक्त संस्कार देकर उत्तम और उपयोगी नागरिक भी बनाएं ।

आज तस्वीर अचानक बदल गई है । अब संस्कार देना माता-पिता और शिक्षकों तक ही सीमित नहीं रह गया है । अब मोबाइल, टीवी, इंटरनेट आदि भी इस संबंध में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं और बच्चों को मनचाही दिशा में ले जा रहे हैं । सोशल मीडिया भी संस्कारों को कई तरह से प्रभावित कर रहा है ।

शिक्षकों और माता-पिताओं ने भी इन बदली हुई स्थितियों में शायद यह स्वीकार कर लिया है कि बच्चों को संस्कार देने का उनका पहले वाला अधिकार अब उनसे छिन गया है। जो माता-पिता रात-दिन अधिक पैसा कमाने और अधिक खर्च करने की चूहा-दौड़ में लगे रहते हैं वे शायद कहीं इस अपराध भाव से भी ग्रस्त रहते हैं कि वे अब अपने बच्चों की देखभाल के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पा रहे हैं । इस अपराध भाव से ग्रस्त वे अपने बच्चों को अब वह करने से भी नहीं रोक नहीं पाते जिसे वे स्वयं ठीक नहीं समझते । बच्चे की हर सही- ग़लत ज़िद के आगे वे अब घुटने टेक देते हैं और इस तरह माता-पिता के रूप में अपने आवश्यक कर्तव्य निभाने में चूक जाते हैं ।

संस्कारवान व्यक्ति हम किसे कहेंगे ? शायद उस व्यक्ति को जो दूसरों की भावनात्मक ज़रूरतों की परवाह करता है और स्वयं थोड़ा कष्ट उठा कर भी अपने व्यवहार से उन्हें खुश करने का प्रयत्न करता है। अपने लाभ के लिए दूसरों से फायदा लेने के बजाय दूसरों के काम आना उसे बेहतर लगता है । संस्कार को हम शिष्टता या तमीज़ से जोड़ कर भी देख सकते हैं। एक

तमीज़दार व्यक्ति अपनी वाणी या व्यवहार से कभी किसी को भावनात्मक ठेस नहीं पहुंचाएगा ।

संस्कारवान व्यक्ति से हम और भी कई तरह के श्रेष्ठ मानवीय गुणों की अपेक्षा रखते हैं। जैसे कि कि ऐसा व्यक्ति आत्मश्लाघा से हमेशा परहेज़ करेगा। विनम्रता और अहंकार -शून्यता को भी हम संस्कारवान व्यक्ति के सहज गुण मानते हैं। अपनी किसी ग़लती को तुरंत स्वीकार करने और उसके लिए क्षमायाचना करने में ऐसे व्यक्ति को कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

अहिंसा, अस्तेय, परोपकार, स्वाध्याय , संवेदनशीलता, व्यवस्था, स्वच्छता, वक़्त की पाबंदी आदि को भी हम किसी व्यक्ति के अच्छे संस्कारों की सूची में शामिल करते रहे हैं। हमारी कल्पना में संस्कारवान व्यक्ति सामान्यत: मितव्ययी होता है और अपव्यय से परहेज़ करता है, परनिन्दा से भी बचता है, भोग के बजाय संयम को चुनता है और किसी का कोई एहसान लेने के बजाय दूसरों पर एहसान करने की इच्छा रखता है।

अच्छे संस्कारों से व्यक्ति में आत्मनियंत्रण का एक भीतरी तंत्र विकसित हो जाता है जो किसी नैतिक दुविधा की स्थिति में उसका मार्गदर्शन करता रहता है। जैसे अस्तेय का विकसित संस्कार व्यक्ति को हमेशा चोरी करने से रोकता रहता है ।

संस्कारवान व्यक्ति बड़ी आसानी से दूसरों का दिल जीत सकता है और इसीलिए अच्छे संस्कार उसकी प्रगति में हमेशा सहायक सिद्ध होते है। इसके विपरीत संस्कारशून्य व्यक्ति अपने लिए हमेशा कोई न कोई नई मुसीबत

खड़ी कर लेता है जिससे उसका जीवन कष्टमय हो जाता है।

आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है जो निश्चय ही व्यक्ति को अच्छे संस्कारों से दूर ले जाती है। आज एक ऐसे सामूहिकता के संस्कार की ज़रूरत है जो व्यक्ति को सबके साथ बांट कर खाने के लिए प्रेरित करे क्योंकि आत्मकेन्द्रित व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ को सदैव अपने ही लिए बचा कर रखना चाहता है । सामूहिकता का संस्कार समानता के हमारे संविधान के निर्देशक सिद्धांत को अपनाने में मदद करता है।

अच्छे स्वास्थ्य के संस्कार का विकास भी हमारे समय की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है क्योंकि पूर्णत: स्वस्थ रह कर ही कोई व्यक्ति दूसरों के काम आ सकता है या किसी की मदद कर सकता है।

सही भोजन , उपयुक्त व्यायाम, पर्याप्त नींद आदि से संबंधित उन तमाम आदतों का विकास जो व्यक्ति को स्वस्थ रहने में मदद करती हैं अच्छे संस्कारों के दायरे में आएगा। एक और संस्कार जिसके विकास की हमारे समय में आवश्यकता बहुत बढ़ गई है वह है स्वावलंबन का संस्कार। माता- पिता का कर्तव्य है कि वे अपनी संतानों को अपने हाथ से काम करना और घर-समाज के लिए उपयोगी और दूसरों के काम आने वाला बनाएं।

आजकल बहुत से मां-बाप अपनी संतानों के प्रति इतने मोहग्रस्त होते हैं कि वे उनकी अनुचित ज़िद को भी पूरी करते हैं। ऐसा करके वे निश्चय ही उनका कोई कल्याण नहीं करते। जब एक बार किसी बच्चे में ग़लत संस्कार डाल दिया जाता है तो आगे चल कर उसे हटाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

श्रम और सेवा का संस्कार भी जरूरी है। हमारे समय में लोगों में आरामतलबी की चाह इस क़दर बढ़ी है कि अब किसी काम के लिए कोई कष्ट नहीं उठाना चाहता। जिस आदमी के भी पास अब थोड़ा सा पैसा है वह अब शारीरिक श्रम से कतराता है। अपने लोगों की सेवा भी अब लोग स्वयं करने के बजाय पैसे देकर दूसरों से करवाते हैं। अब आदमी ज़रूरत के वक़्त भी किसी दूसरे आदमी के काम आने से कतराने लगा है। संकट के समय जहां पहले कोई भी दूसरों की सेवा में तत्पर रहता था वहां अब कई बार अपनों से भी मुंह फेर लिया जाता क्योंकि श्रम और सेवा अब उनकी आदत में नहीं रही। अब हर सेवा केवल पैसे से ही खरीदी जाती है।

यह स्थिति वस्तुत: एक संस्कारविहीनता की स्थिति है जिसमें परिवर्तन मानवता के बचाव के लिए आवश्यक हो गया है।❑

समस्या

कुछ युवाओं के लिये वयस्कता की दहलीज लांघना आसान नहीं होता

❑

प्रीति प्रसाद कैटालिस्ट्स फॉर सोशल एक्शन की सीओओ हैं तथा सत्यजीत मजूमदार उसके विधि निदेशक हैं। ❑ सं.

❑

प्रीति प्रसाद

❑

सत्यजीत मजूमदार

एक परिवार में पले-बढ़े ज़्यादातर 17 वर्षीय बच्चों के लिए, 18 साल का होने की संभावना प्रत्याशा और उत्साह से भरी होती है। वयस्क होना सिर्फ़ एक मील का पत्थर नहीं है; यह स्वतंत्रता और ज़िम्मेदारियों का प्रवेश द्वार है। कोई व्यक्ति पहली बार अपना वोट डालने, एक स्वतंत्र बैंक खाता खोलने, ड्राइविंग लाइसेंस प्राप्त करने और सबसे महत्वपूर्ण रूप से, उच्च शिक्षा के लिए आवेदन करके या नौकरी की तलाश करके अपने करियर की ओर पहला कदम बढ़ाने के लिए उत्सुक रहता है। इस पूरी यात्रा के दौरान, उसे अपने परिवार का बहुत ज़रूरी समर्थन और मार्गदर्शन मिलता है।

लेकिन 17 साल के उन बच्चों के लिए जो चाइल्डकेयर इंस्टीट्यूशन में बड़े हुए हैं, 18 साल का होना बहुत अलग होता है। यह उस जगह पर उनके रहने का अंत है जिसे वे कई सालों से अपने घर के रूप में जानते हैं। वे उस एकमात्र 'परिवार' से अलग कर दिए जाते हैं जिसे वे जानते हैं। उन्हें अचानक एक अपरिचित दुनिया में धकेल दिया जाता है। बड़ों से बहुत कम या कभी-कभी बिना किसी सहायता और मार्गदर्शन के खुद की देखभाल करने के लिए उन्हें छोड़ दिया जाता है। उन्हें चाइल्डकेयर इंस्टीट्यूशन के बाद की देखभाल की पेशकश की बेहद जरूरत होती है, एक ऐसी सहायता प्रणाली जो उनके वयस्कता में संक्रमण में मदद करे। ऐसे युवा वयस्कों को सहायता प्रदान करने में आफ्टरकेयर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती जिसे 'केयर लीवर्स' के रूप में भी जाना जाता है। वे संस्थागत देखभाल से स्वतंत्र जीवन में प्रवेश करते हैं।

हर साल, भारत में लगभग 50,000 युवा वयस्क संस्थागत देखभाल से बाहर हो जाते हैं, जिनमें से कई के पास स्वतंत्र रूप से रहने के लिए आवश्यक कौशल, संसाधन या सहायता प्रणाली नहीं होती है।

भारत में, संस्थागत देखभाल उन बच्चों को प्रदान की जाती है जिन्हें देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता होती है, साथ ही कानूनी अपराध में पकड़े गये बच्चों को भी। संरचित समर्थन की उनकी निरंतर आवश्यकता को

पहचानते हुए, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015, या जेजे अधिनियम, 18 से 21 वर्ष की आयु के बीच देखभाल छोड़ने वालों के लिए आफ्टरकेयर सेवाएं देने की व्यवस्था है।

अधिनियम की धारा 46 में कहा गया है कि 18 वर्ष की आयु होने पर सीसीआई छोड़ने वाले किसी भी बच्चे को, यदि आवश्यक हो, तो मुख्यधारा के समाज में उनके पुनः एकीकरण की सुविधा के लिए वित्तीय सहायता दी जा सकती है।

इसे क्रियान्वित करने के लिए, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के नियम 25 में राज्य सरकारों को – जिला मजिस्ट्रेट और जिला बाल संरक्षण इकाई के माध्यम से – आफ्टरकेयर कार्यक्रम विकसित करने की आवश्यकता होती है।

इन कार्यक्रमों में निरंतर शिक्षा, कौशल विकास, नौकरी की व्यवस्था, सुरक्षित आवास और वित्तीय सहायता के प्रावधान की जरूरत होती है।

नियम में यह भी प्रावधान है कि असाधारण परिस्थितियों में सहायता 23 वर्ष की आयु तक बढ़ाई जा सकती है, जैसे कि उन लोगों के लिए जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी नहीं की है या जिनके पास आवास की कमी है।

शारीरिक या बौद्धिक अक्षमता वाले देखभाल छोड़ने वालों को भी लंबी अवधि के लिए सहायता की आवश्यकता हो सकती है।

मिशन वात्सल्य, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की एक प्रमुख योजना है जिसका उद्देश्य बच्चों की ऐसी सुरक्षा और सहायता करना है। यह देखभाल सहायता प्रदान करने वाले सीसीआई, संगठनों या व्यक्तियों को प्रति बच्चे 4,000 रुपये प्रति माह की वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह योजना राज्य सरकारों को युवा वयस्कों को अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भी प्रोत्साहित करती है।

ये प्रावधान देखभाल को एक विवेकाधीन लाभ के रूप में नहीं बल्कि देखभाल के एक आवश्यक विस्तार के रूप में परिभाषित करते हैं जिससे कि समाज के कुछ सबसे कमजोर युवाओं के लिए बचपन और वयस्कता के बीच की खाई को पाटी जा सके। जमीनी स्तर पर ऐसा नहीं होता है तो उनकी कई चुनौतियां अनसुलझी रह जाती हैं।

संस्थागत देखभाल में पले-बढ़े बच्चों को अक्सर देखभाल से बाहर निकलने के बाद उनके लिए उपलब्ध अवसरों और सहायता प्रणालियों के बारे में सीमित जानकारी होती है, जिसमें वयस्कता में उनके संक्रमण का समर्थन करने के लिए आफ्टरकेयर सेवाएँ शामिल हैं।

उदयन केयर द्वारा 2019 में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि सर्वेक्षण किए गए 67 प्रतिशत देखभाल छोड़ने वाले लोग देखभाल के बाद के प्रावधानों से अनभिज्ञ थे।

एक विश्वसनीय सहायता प्रणाली की अनुपस्थिति देखभाल छोड़ने वालों पर एक महत्वपूर्ण भावनात्मक और मानसिक बोझ डालती है, जिससे उनके लिए अपने भविष्य के बारे में सूचित और आश्वस्त विकल्प बनाना मुश्किल हो जाता है। सामाजिक पूर्वाग्रह भी उनकी शिक्षा, रोजगार और सामुदायिक स्वीकृति तक पहुँच को सीमित कर सकता है, जिससे उनकी नई शुरुआत की संभावनाएँ कम हो जाती हैं।

देखभाल छोड़ने वालों को वास्तव में समर्थन देने के लिए, हमें देखभाल के बाद की देखभाल की निरंतरता के रूप में फिर से कल्पना करनी चाहिए, जिसकी शुरुआत सीसीआई के भीतर से होनी चाहिए। किसी बच्चे के देखभाल से बाहर निकलने से पहले बच्चे की आकांक्षाओं और ज़रूरतों के अनुरूप एक विस्तृत और व्यक्तिगत देखभाल सहायता योजना तैयार करनी चाहिए।

मिशन वात्सल्य के तहत देखभाल छोड़ने वालों के लिए वित्तीय सहायता को सबके लिए सुलभ बनाया जाना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षा, कौशल और आवास की आवश्यकता को पूरा करने के लिए सहायता के दायरे का विस्तार किया जाना चाहिए। केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में देखभाल छोड़ने वालों के लिए स्पष्ट प्रावधान शामिल करना होगा।

आफ्टरकेयर के लिए सरकार, नागरिक समाज और निजी क्षेत्र में समन्वित प्रयास की आवश्यकता होती है। प्रभावी देखभाल एक बार का हस्तक्षेप नहीं है बल्कि एक सतत प्रक्रिया है जिसके लिए प्रारंभिक तैयारी, व्यवस्थित समन्वय और निरंतर समर्थन की आवश्यकता होती है। ❑

'त्सुंडोकू': किताबों से घर सजाने की जापानी परंपरा

किताबें जमा करने और सजाये रखने का शौक व्यक्ति को पढ़ने की ओर ले ही जाता है। इस जापानी प्रथा को बताता है यह आलेख।❑ सं.

❑ **जेमी राइडर**

❑

जब से मैं याद कर सकता हूँ, मेरा जीवन किताबों से भरा हुआ रहा है। जासूसी उपन्यास, पौराणिक महाकाव्य, दर्शनशास्त्र की किताबें, ऐतिहासिक कथाएं और ऐसे विषय जिनमें बस मेरी क्षणिक रुचि है। कुछ किताबें मैंने कई बार पढ़ी हैं, कुछ को मैं फिर कभी नहीं छूऊँगा और शायद अलमारियों में उन पर धूल जमा होती रहेंगी।

आप भी अपनी अलमारियों में ऐसी किताबें रखते हों जिन्हें आप कभी नहीं पढ़ेंगे। और यह गलत भी नहीं है। जापानी में इसके लिए एक शब्द 'त्सुंडोकू' है, जिसका अर्थ है ऐसी किताबें का ढेर घर में इकट्ठा करना, जिन्हें कभी नहीं पढ़ा जाएगा। इस शब्द का इस्तेमाल बुकशेल्फ़ पर रखी बिना पढ़ी गई किताबों के लिए भी किया जाता है, जिन्हें बाद में पढ़ा जा सकता है।

लेकिन सवाल यह है कि मूल रूप से 'त्सुंडोकू' क्या दर्शाता है? एक संग्रहकर्ता की आदतें? या एक छद्म बुद्धिजीवी का दिखावा?

यह शब्द मीजी युग (1868-1912) में जापानी स्लैंग के रूप में 1879 में उभरा था। यह शब्द 'त्सुंडे-ओकू' याने बाद के लिए चीजों को इकट्ठा करके रखना तथा 'डोकुशो' अर्थात किताबें पढ़ना के मेल से बना था जो एक शिक्षक के बारे में था जिसके पास बहुत सारी किताबें थीं, लेकिन उसने उन्हें कभी नहीं पढ़ा था। हालांकि यह अपमानजनक लग सकता है, लेकिन इस वाक्यांश का कोई अपमानजनक अर्थ नहीं है। वास्तव में, सुन्डोकू के कार्य में सकारात्मक लक्षण होते हैं।

यह अवधारणा 'बिब्लियोमेनिया' से अलग है, जो कि पहले संस्करणों जैसी दुर्लभ पुस्तकों के संग्रह की प्रवृत्ति है। 'त्सुंडोकू' के पीछे जानबूझकर काम किया जाता है। यह पुस्तकों को इकट्ठा करने और उनके लिए एक घर खोजने या भविष्य में उन्हें पढ़ने की जागरूकता है। यह संग्रह करने के लिए संग्रह करना नहीं है।

इसे ध्यान में रखते हुए, 'त्सुंडोकू' को लागू करने के कई तरीके हो सकते हैं। जैसे किताबें खरीदना और उन्हें कैसे पढ़ा जाय, इस बारे में गंभीरता से सोचना। फिर एक दिन आप किसी उपन्यास के कुछ अध्याय पढ़ने का

फैसला कर सकते हैं और किताब को नीचे रख सकते हैं। अगले दिन आप नॉन फिक्शन पुस्तक की ओर बढ़ते हैं। फिर, आप कहानी कहने के पहलू के लिए उपन्यास की ओर बढ़ते हैं। आप एक स्वतंत्र प्रकाशक से एक पुस्तक खरीदते हैं और उसे संग्रहीत करते हैं। ऐसा करके आप उस व्यवसाय की आजीविका में योगदान देते हैं और लेखक की भी। आप एक किताब खरीदते हैं, उसे एक निश्चित समय के लिए संग्रहीत करते हैं और फिर उसे किसी पुस्तकालय को दान कर देते हैं तो आपका घर किताब के लिए एक रास्ता बन जाता है क्योंकि अंततः यह किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों में जाती है जिसे इसकी सामग्री से अधिक लाभ होने की संभावना हो सकती है।

'त्सुंडोकू' को देखने का एक और तरीका 'एंटीलाइब्रेरी' का विचार भी है। नासिम निकोलस तालेब ने अपनी रचना 'द ब्लैक स्वानः द इम्पैक्ट ऑफ़ द हाईली प्रोबेबल' में यह विचार गढ़ा था जिसकी तुलना त्सुंडोकू से की जाती है। तालेब के लिए, एंटीलाइब्रेरी अधिक ज्ञान प्राप्त करने और जिज्ञासु बने रहने के लिए एक अनुस्मारक के रूप में कार्य करती है। पुस्तकों का एक बड़ा संग्रह यह नहीं दर्शाता है कि कोई व्यक्ति कितना जानता है, बल्कि यह दर्शाता है कि वह अधिक जानने की कोशिश कर रहा है। लेखक अम्बर्टो इको के जीवन की ओर इशारा करते हैं, जिनके पास 30,000 पुस्तकों का संग्रह था। अधिकांश ने माना कि पुस्तकें इको के ज्ञान के प्रभावशाली योग का प्रतीक हैं। वास्तव में यह इको की सीखने की इच्छा को दर्शाता है।

तालेब लिखते हैं, पढ़ी हुई किताबें, बिना पढ़ी हुई किताबों से कहीं कम मूल्यवान होती हैं। आपकी लाइब्रेरी में उतनी ही किताबें होनी चाहिए, जितनी आप नहीं जानते, जितनी आपकी वित्तीय क्षमता, आपको रखने की अनुमति देती है। जैसे-जैसे आप बड़े होते जाएंगे, आप ज़्यादा ज्ञान और किताबें जमा करते जाएंगे, और अलमारियों पर बिना पढ़ी हुई किताबों की बढ़ती संख्या आपको ख़तरनाक नज़रों से देखेगी। दरअसल, जितना ज़्यादा आप जानते हैं, उतनी ही ज़्यादा बिना पढ़ी हुई किताबों की कतारें होती हैं। आइए हम बिना पढ़ी हुई किताबों के इस संग्रह को एंटीलाइब्रेरी कहें।

इसलिए, बहुत सारी किताबें इकट्ठा करना और उन्हें न पढ़ना आपके अहंकार को सही जगह पर लाना हो सकता है। आपकी किताबों का संग्रह एक ट्रॉफी नहीं होना चाहिए। यह विनम्र रहने और उन विषयों का जीवंत संसाधन बनाने का एक तरीका है, जिनके बारे में आपको पहले से कुछ भी पता नहीं है। वह जिज्ञासा के लिए एक उत्सव और मांग है।

इसे लिखते समय, मैं वित्त और रियल एस्टेट के बारे में ज़्यादा जिज्ञासु हो गया हूँ। मेरे पुस्तक संग्रह में हाल ही में शामिल पुस्तकों में द इंटेलिजेंट इन्वेस्टर, द मैनडिल्सः ए फैमिली, 2029 - 2047 और रियल एस्टेट इन्वेस्टिंग 101: ए क्रैश कोर्स इन बिल्डिंग वेल्थ शामिल हैं।

क्या मुझे इन विषयों में विशेषज्ञ बनने की इच्छा है? नहीं, बिल्कुल नहीं। क्या मैं कभी इन उद्योगों में होने वाले जटिल मामलों को पूरी तरह से समझ पाऊंगा? बिलकुल नहीं। क्या मैं भविष्य में इन पुस्तकों को फिर से पढ़ूंगा? कहना मुश्किल है।

लेकिन जब मैं अपनी शेल्फ पर इन पुस्तकों को देखता हूं, तो मुझे एहसास होता है कि मैं धीरे-धीरे नई चीजें सीखने में कितना आनंद महसूस करता हूं। मैं इस बात से अवगत हूं कि जो चीजें मुझे पहले सूखी और उबाऊ लगती थीं, वे अब अधिक व्यावहारिक और उपयोगी हो गई हैं। मैं नए विचारों और लेखन की प्रेरणा से भरा हुआ हूं। मैं उन लोगों से संपर्क करने के लिए प्रेरित हूं जो मुझसे अधिक जानते हैं और उनकी मदद मांगते हैं।

बेशक, हमेशा किताब खरीदने का खतरा बना रहता है और इसके संकेतों को पहचानना इस निबंध की सीमाओं से परे है। सुन्डोकू जो सिखा सकता है वह है उन पुस्तकों को खरीदने के बजाय जिज्ञासु और आत्म-दयालु होने का आनंद जो आप कभी नहीं पढ़ेंगे। आइए खुद के सुन्डोकू सेंसई बनिये।❑

शोध के साथ रोमांच रचने वाला लेखक नहीं रहा

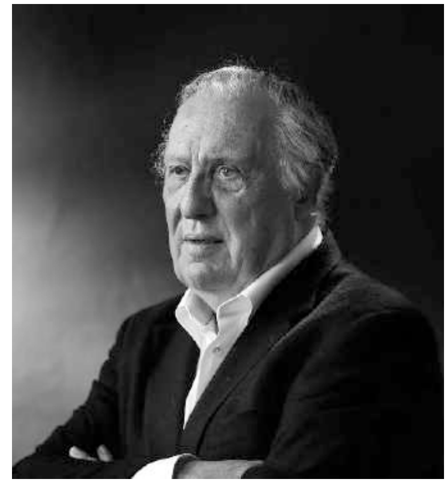

एक पत्रकार के रूप में अपने रोमांच और ब्रिटिश खुफिया एजेंसी अनुभवों को बेस्टसेलिंग थ्रिलर में बदलने वाले लेखक फ्रेडरिक फोर्सिथ की 86 वर्ष की आयु में 9 जून को इंग्लैंड में निधन हो गया।

फोर्सिथ अपने उपन्यासों में एक अखबारी रिपोर्टर की नज़र लाये और 'द डे ऑफ़ द जैकल', 'द ओडेसा फ़ाइल' और 'द डॉग्स ऑफ़ वॉर' जैसे उपन्यास लिख कर थ्रिलर लेखन की शैली को ही बदल दिया।

धमाकेदार कथानक में शोध को सावधानीपूर्वक जोड़ कर उन्होंने एक के बाद एक उपन्यास लिखे, जिनकी दुनिया भर में 75 मिलियन से अधिक प्रतियां बिकीं, और उन्हें अनेकों सम्मान मिले।

एशफ़ोर्ड, केंट में 1938 में जन्मे, फोर्सिथ ने अपनी राष्ट्रीय सेवा के दौरान लड़ाकू जेट उड़ाए, रॉयटर्स समाचार एजेंसी के लिए एक पत्रकार के रूप में काम। पूर्वी जर्मनी में कुछ समय बिताने के बाद, फोर्सिथ बीबीसी में चले गए और 1967 में उन्हें बियाफ्रान युद्ध को कवर करने के लिए नाइजीरिया भेजा गया।

उन्हें बताया गया कि सेना कुछ हफ़्तों में विद्रोह को दबा देगी। फ़ोर्सिथ का काम नाइजीरियाई सेना के विजयी मार्च की रिपोर्ट करना था। मगर वहां सेना विजयी नहीं हुई और उन्होंने वहां जो हुआ उसकी रिपोर्ट कर दी। जब उनकी रिपोर्ट प्रसारित हुई तो उन पर विद्रोहियों के पक्ष में होने का आरोप लगाते हुए वापस लंदन बुला लिया गया।

फोर्सिथ ने नौकरी छोड़ दी और 1968 में एक स्वतंत्र रिपोर्टर के रूप में बियाफ्रा लौट आए। वहां उन्होंने दुनिया को झकझोर देने वाले अकाल की कहानी उजागर की और ब्रिटिश खुफिया एजेंसी के लिए काम करना शुरू कर दिया। हालाँकि फोर्सिथ ने हमेशा इस बात से इनकार किया कि वह एक जासूस है।

दिसंबर 1969 में फोर्सिथ जब ब्रिटेन वापस आये तब उन्होंने पाया कि उनके पास कोई नौकरी नहीं है, कोई संभावना नहीं है, कोई फ्लैट नहीं है, कोई कार नहीं है, कोई बचत नहीं है। फोर्सिथ ने पैसे कमाने का सबसे निराशाजनक तरीका अपनाया: एक उपन्यास लिखा। मैंने 35 दिनों तक रात-दिन लिखा। जैकल उपन्यास दे गॉल को मारने की एक हत्यारे की साजिश को विफल करने के लिए हुई एक जांच पर आधारित था।

असली जांच के विवरणों से भरा और सार्वजनिक हस्तियों के साथ काल्पनिक पात्रों को सामने रखते हुए, उपन्यास थ्रिलर शैली में एक नया यथार्थवाद लाया। द गार्जियन ने 1971 में इसे एक भयावह, शानदार शोध वाली कहानी के रूप में सराहा, और पूछा क्या यह काल्पनिक है? यह तेजी से वैश्विक बेस्टसेलर बन गया, जिस पर दो साल बाद एक फिल्म भी बन कर जबरदस्त सफल रही।

1972 की द ओडेसा फ़ाइल में, एक युवा जर्मन रिपोर्टर नाज़ी युद्ध अपराधी एडुआर्ड रोशमैन की तलाश में जाता है और एसएस के उच्च-रैंकिंग सदस्यों का बचाव करने वाले एक संगठन से टकराता है। यह जल्दी ही बेस्टसेलर बन गया। .

. फोर्सिथ को कभी भी कथा साहित्य की कला से कोई लगाव नहीं रहा। उन्होंने बार-बार लेखन से अपनी सेवानिवृत्ति की घोषणा की। लेकिन फ़ोर्सिथ यह कहते हुए कि, मैं थोड़ा स्वार्थी हूं मैं पैसे के लिए लिखता हूं अपने टाइपराइटर पर वापस लौटते रहे और अपने जीवनकाल में 25 से ज़्यादा किताबें लिखीं।

अपने 2018 के उपन्यास 'द फ़ॉक्स' के लॉन्च पर टाइम्स से बात करते हुए, लेखक ने एक बार फिर घोषणा की कि यह उनकी आखिरी किताब होगी। फोर्सिथ के प्रकाशक बिल स्कॉट-केर ने कहा, फ्रेडी अपने पीछे एक अद्वितीय विरासत छोड़ गए हैं जो आने वाले वर्षों में पाठकों को रोमांचक मनोरंजन करती रहेगी।❑

वाल्मीक थापर का निधन

प्रख्यात वन्यजीव संरक्षणवादी और लेखक वाल्मीक थापर का 31 मई, 2025 को दिल्ली में निधन हो गया। वह 73 वर्ष के थे।

नयी दिल्ली में 1952 में जन्मे थापर ने अपना अधिकतर जीवन राजस्थान के रणथंभौर राष्ट्रीय उद्यान में बाघों के अध्ययन और संरक्षण को समर्पित किया। थापर बाघों पर अपनी लगभग 50 पुस्तकों, अपनी आकर्षक फोटोग्राफी और जिम्मेदार पर्यटन और संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी की वकालत के लिए जाने जाते थे। वे प्रोजेक्ट टाइगर के कुछ पहलुओं और वन्यजीव संरक्षण में नौकरशाही बाधाओं के मुखर आलोचक थे।

थापर ने अपने लेखन और व्यावहारिक प्रयासों से अनेक लोगों को वन्यजीव संरक्षण के लिए प्रेरित किया। उन्होंने 1987 में एक गैर-सरकारी संगठन 'रणथंभौर फाउंडेशन' की स्थापना की, जो रणथंभौर टाइगर रिजर्व के आसपास के क्षेत्रों में स्थानीय समुदायों को जोड़ कर संरक्षण प्रयासों पर केंद्रित है। जिम्मेदार पर्यटन का समर्थन करते हुए, उन्होंने इस धारणा को भी चुनौती दी कि सभी पर्यटन वन्यजीवों को नुकसान पहुंचाते हैं। उन्होंने ऐसे अभिनव तरीकों की वकालत की जो पार्कों और लोगों दोनों को लाभ पहुँचा सकते हैं।

उन्होंने वन्यजीवों से संबंधित कई सरकारी समितियों में काम किया, जिनमें राष्ट्रीय वन्यजीव बोर्ड और वन्यजीवों पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकार प्राप्त समिति शामिल हैं। ❑

RS-CIT
एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज
- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
it shapes future
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें
या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

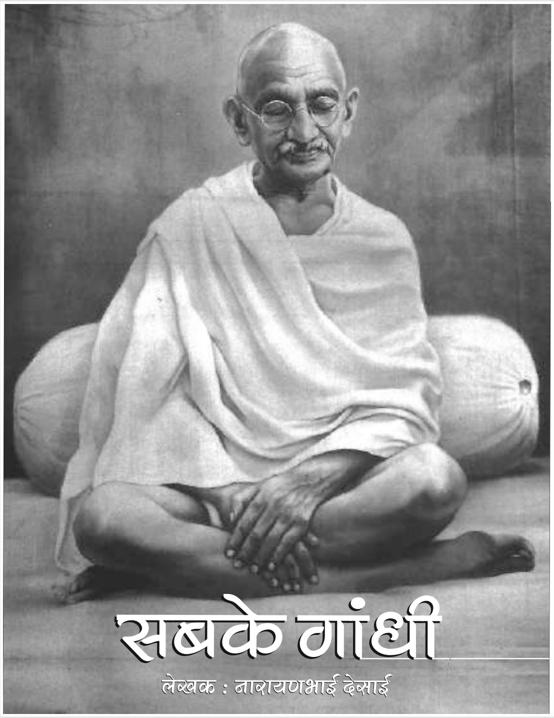

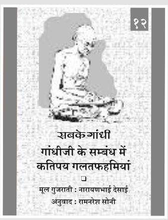

सबके गांधी

सहयोग राशि के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।